R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

अगस्त 2018

अंक 7

तपोभूमि

मासिक

सम्पादकीय

गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर मथुरा में गुरुपूर्णिमा का पर्व सम्पन्न

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गुरुपूर्णिमा का दो द्विवसीय कार्यक्रम 26 और 27 जुलाई को श्रद्धासहित सम्पन्न हुआ। यद्यपि भारी वर्षा के कारण आयोजन में बहुत बाधायें आयीं लेकिन आर्य संस्कृति में दृढ़ आस्था रखने वाले आर्यजनों के उत्साह में न्यूनता नहीं आयी, जिसके परिणामस्वरूप कार्यक्रम सफलता सहित सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुकुल वृन्दावन में प्रविष्ट हुए 25 ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ तथा भरतपुर निवासी दम्पत्ति श्री भानुप्रतापसिंह व श्रीमती रेखा आर्या ने अपने सुपुत्र गुरुदत्त का जन्मदिवस भी बड़ी भावना के साथ मनाया और यज्ञ के मुख्य यजमान के दायित्व का निर्वहन किया। गुरुकुल के अनन्य सहयोगी श्री रमेशचन्द्र शर्मा ने अपने पौत्र प्रणव शर्मा का भी उपनयन संस्कार इस अवसर पर कराया। गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारियों ने यजुर्वेद के कुछ अध्यायों को कण्ठस्थ करके सुनाया जिनकी परीक्षा उन अध्यायों के अलग-अलग मन्त्रों को पूछकर सार्वजनिक रूप से ली गयी जिनमें ब्रह्मचारियों में सराहनीय प्रयास किया था सभी ब्रह्मचारियों ने सार्वजनिक रूप से पूछे गये मन्त्रों को सुनाया उन ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचारी अभिषेक, ब्रह्मचारी प्रदीप, ब्रह्मचारी अखिलेश, ब्रह्मचारी मोहित, ब्रह्मचारी राघव, ब्रह्मचारी अवनीश, ब्रह्मचारी नीलेश, ब्रह्मचारी शिवदत्त, ब्रह्मचारी अभिषेक द्वितीय कक्षा 6 ने इस परीक्षा में भाग लिया। गुरुकुल निवास कर रहे आर्ष विद्या के अनन्य भक्त श्री गोविन्दमुनिजी ने सभी बच्चों को एक-एक हजार रूपये देकर पुरस्कृत किया। इस अवसर पर देवमुनि वानप्रस्थ जी ने ईश्वरभक्ति और ऋषिभक्त के गीत प्रस्तुत किये। महाशय लाखनसिंह जी आर्य माल वालों ने भी अपने गीतों के माध्यम से महर्षि दयानन्द और गुरुपूर्णिमा के महत्व पर प्रकाश डाला। गुरुकुल के ब्रह्मचारी यश आर्य ने एक प्रतिज्ञा के माध्यम से अपने भाव व्यक्त करते हुए **"दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे, दयानन्द का काम पूरा करेंगे"** के सुन्दर गीत द्वारा भावना प्रकट की। जनता ने करतल ध्वनि द्वारा ब्रह्मचारी का उत्साह बढ़ाया। ब्रह्मचर्य के महत्व को दर्शाते हुए ब्रह्मचारी कृष्णदेव व ब्रह्मचारी सोमदेव ने सामूहिक ब्रह्मचर्य के महत्व को दर्शाने वाला गीत गाया। छोटे से ब्रह्मचारी सागर ने महर्षि दयानन्द की महत्ता पर सुन्दर व्याख्यान दिया। ब्रह्मचारी अभिषेक ने गुरुकुल शिक्षा की महत्ता पर अपना व्याख्यान् धाराप्रवाह संस्कृत भाषा में दिया जिसकी जनता ने काफी प्रशंसा की। ब्रह्मचारी अखिलेश ने आधुनिक शिक्षा और गुरुकुल शिक्षा में मूलभूत अन्तर क्या है इस विषय पर समालोचनात्मक दृष्टिकोण अपने विस्तृत व्याख्यान के माध्यम से रखा। ब्रह्मचारी प्रदीप ने वैदिक सूक्त

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्०)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–64 | संवत्सर 2075 | अगस्त 2018 | अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2018

सृष्टि संवत्
1960853119

दयानन्दाब्दः 194

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा 0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
आचार	–श्यामबिहारी मिश्र	5
वह देश कौन सा है ?	–रामनरेश त्रिपाठी	6
विरजानन्द प्रकाश	–भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण	7–10
मोक्ष–धर्म	–स्वामी सत्यानन्द महाराज	11–14
पक्षपात और द्वेष से धर्महानि	–सूरजभान आर्य	15–18
द्रव्य का उपयोग	–पं0 माधवराव	19–20
स्वास्थ्य चर्चा		21–24
हंस		25–26
प्राचीन आर्य	–आचार्य धर्मेन्द्र	27–30
जगत को आर्य बनाओ	–पं0 नन्दलाल निर्भय	31–32
कहो कौन गाये?		33
अन्तर्राष्ट्रिय आर्य सम्मेलन 2018		34

❋❋❋

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

मेरे अभीष्ट मुझे आवश्य प्राप्त हों

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु मेह।। -अथर्व0 5। 3। 4

शब्दार्थः-

(मह्यं यजन्ताम्) मुझे प्राप्त हों(मम यानि इष्टा) मेरी जो इष्ट वस्तुएँ हैं। (मे मनसः आकूतिः) मेरे मन का संकल्प (सत्या अस्तु) सत्य हो। (अहम्) मैं (कतमच्चन) कोई भी (एनः) पाप (मा नि गाम्) प्राप्त न करूँ। (विश्वे देवाः) सब विद्वज्जन (मा) मेरी (इह) यहाँ (अभि रक्षन्तु) रक्षा करते रहें।

भावार्थः-

प्रत्येक मनुष्य सुखी रहना चाहता है। उसकी कामना होती है कि सुख के सब आवश्यक साधन मुझे प्राप्त होते रहें। भरपूर भोज्य पदार्थ मिले, दूध-ही-मक्खन मिले, रसीले फल मिलें, बादाम-किशमिश-छुहारे मिलें, उत्तमोत्तम सुगन्धित पेय मिलें, शरीर के रोग या कष्ट दूर करने के लिए स्वास्थ्यकर औषध मिलें, मनोरंजन के साधन मिलें, क्रीड़ा-सामग्री मिलें। मेरी भी अभिलाषा होती है कि मेरे अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति मुझे सहज ही होती रहे, मैं धनी-मानी मनुष्यों में गिना जाऊँ, समाज में और प्रशासन में भी मेरी स्थिति अच्छी हो, सभा-सम्मेलनों के निमन्त्रण मुझे प्राप्त होते रहें। इस प्रकार के मेरे सब अभीष्टों की पूर्ति होती रहे।

दूसरी बात मैं यह चाहता हूँ कि मेरे मन की 'आकूति' मेरे मन के संकल्प सत्य हों। ऐसे ही मैं शेखचिल्ली के के समान संकल्पों के पुल न बाँधता रहूँ। जो संकल्प ठानूँ सोच-विचारकर ठानूँ, फिर उसके क्रियान्वयन में प्राणपण से लग जाऊँ तथा उसे सफल करके दिखाऊँ। मैं यदि संकल्प करूँ कि लोकसभा का सदस्य चुना जाऊँ, तो उसके लिए आवश्यक सब गुण-कर्मों को अपने अन्दर पैदा करूँ, मतदाताओं से भी परिचय बढ़ाऊँ और उन्हें यह विश्वास दिलाऊँ कि लोकसभा में जाकर मैं आप लोगों का और राष्ट्र का हित कर सकता हूँ। ऐसे ही अन्य सब संकल्पों को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील रहूँ।

तीसरी प्रार्थना मैं यह कर रहा हूँ कि मैं किसी भी पापकर्म का भागी न बनूँ। शास्त्रकारों ने जो पातक और महापातक बताये हैं, तथा अन्य भी जो कार्य इस श्रेणी में आ सकते हैं, उन्हें मैं स्वप्न में भी न करूँ। यदि में किसी निर्दोष व्यक्ति की जान लेने का पाप करता हूँ, तो मुझे यह सोचना चाहिए कि यदि वह मुझ निर्दोष को जान से मारना चाहेगा, तो मुझे कैसा लगेगा। पाप मनुष्य तब करता है जब विवेक में अन्धा हो जाता है। मैं अपने विवेक को स्थिर रखूँ और सदा पाप से बचता रहूँ।

गतांक से आगे–

आचार

लेखकः श्यामबिहारी मिश्र

हमारे यहां विशिष्ट भोज्य पदार्थों के ग्रहण एवं त्याग पर थोड़े काल से झगड़ा मच रहा है। इसलिये यहां इस विषय पर भी कुछ लिखा जाता है। यद्यपि वस्तुतः इसका आयुर्वेद से सम्बन्ध है, न कि धर्म एवं आचार से, फिर भी हमारे यहां स्व–शरीर–रक्षण भी प्रत्येक मनुष्य का धर्म समझा गया है। क्योंकि आत्म–शरीर को भी ऋषियों ने स्वसंपत्ति न मानकर थाती मात्र माना है। इसलिये हम स्वेच्छा स्वशरीर का हनन अथवा उसकी अवनति करने से पाप के भागी होते हैं। इन्हीं कारणों से आयुर्वेद सम्बन्धी नियम भी हमारे ऊपर वैसे ही बाध्य हैं जैसे कि अन्य धार्मिक नियम। इसीलिये हमारा आयुर्वेद भी एक प्रकार का धर्म शास्त्र है।

अब हम इसी का सम्बन्ध धर्माचार से दिखलाने में प्रवृत्त होते हैं। हमारे यहां मांस–भक्षण पर प्राचीन काल से ऋषि लोग विचार करते आए हैं। दया का भाव हमारे यहां धर्म का एक विशेष अंग माना गया है। इसी से जीव मात्र का अकारण हनन पातक समझा गया है। यह बात कुछ अंशों में यथार्थ भी है क्योंकि हमें यथासम्भव सबके साथ न्याय करना चाहिए। फिर भी अनेकानेक ऐसे शरीरी हैं जो अकारण भी मनुष्य एवं औरों पर प्रहार कर बैठते हैं, जैसे सांप, बिच्छू, सिंह आदि। इनके ऊपर दया करना मनुष्य के साथ निर्दय होना है। इसी प्रकार मृगादिक तथा अनेक पक्षी हमारे क्षेत्रों की उपज पर सदैव आक्रमण किया करते हैं। इनके मारने के लिये ही मृगय करना क्षत्रियों का धर्म माना गया है। फिर सिंहादि की प्रकृति ही ऐसी है कि वे अन्य शरीरियों का भक्षण कर के ही जी सकते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि सिंह मृग–हिंसा करने में पाप कमाते हैं। यही दशा कई अन्य जीवों की है। फिर वनस्पति भी निर्जीव न होकर सजीव हैं। जलवायु आदि में भी अनेक शरीरी रहते हैं जिन्हें न जानते हुए हम सदैव खाते रहते हैं। दुग्ध, घृतादि भी शरीरभव हैं, सो इनका भक्षण भी एक प्रकार से शरीर भक्षण के समान है। इन कारणों से कोई मनुष्य वरन् जीवधारी शरीराभक्षी होने का अभिमान नहीं कर सकता। इन्हीं कारणों से हमारे ऋषियों ने लिखा है कि जिस जीवधारी का प्राकृतिक भक्षण जो है, उसके सम्पादन में यदि कोई वध भी होवे, तो वह वध पाप का कारण नहीं हो सकता। ❁❁❁

पृष्ठ संख्या 4 शेष–

चौथी अभिलाषा मेरी यह है कि सब देव इस जगत् में मेरी रक्षा करते रहें। देवों में माता, पिता, आचार्य, अतिथि, संन्यासी आदि आते हैं, जो पूर्णतः दिव्य गुणों में रंगे होते हैं। निरुक्त के अनुसार देव उसे कहते हैं, जो दान करता है, जो स्वयं दीप्तिमान् है तथा दूसरों को दीप्तिमान् करता है। जब भी मैं कभी गलत राह पर चलने लगूँ, तब उक्त सब देव मुझे उस राह पर जाने से बचायें। उस राह पर चलने से जो हानि सम्भावित है उससे मुझे परिचित करायें और मुझे सावधान करें। इन देवों का मैं आदर करता हूँ, इनके परामर्श को स्वीकार करके कुमार्ग पर जाने का अपना इरादा मैं छोड़ दूँगा, इस प्रकार मेरी रक्षा हो सकेगी। ❁❁❁

वह देश कौन सा है ?

रचयिताः रामनरेश त्रिपाठी

(1)

मन मोहनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग सा जहाँ है वह देश कौन सा हे॥
जिसका चरण निरन्तर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौनसा है॥

(2)

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौनसा है॥
जिसके बड़े रसीले फल कंद नाज मेवे।
सब अंग में सजे हैं वह देश कौनसा है॥

(3)

जिसके सुगन्ध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे हैं वह देश कौनसा है॥
मैदान गिरि वनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ है वह देश कौनसा है॥

(4)

जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौनसा है॥
सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा वह देश कौनसा है॥

(5)

पृथ्वी-निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौनसा है॥
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजल वह देश कौनसा है॥

(6)

छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम था जहाँ पर वह देश कौनसा है॥
निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे।
लक्ष्मण भरत सरीखे वह देश कौनसा है॥

(7)

देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थी।
माता पिता जगत का वह देश कौनसा है॥
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल-ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर वह देश कौनसा है॥

(8)

विद्वान्, वीर, योगी, गुरु राजनैतिकों का।
श्रीकृष्ण था जहाँ पर वह देश कौनसा है॥
वाल्मीकि व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे।
श्री कालिदास वाला वह देश कौनसा है॥

(9)

निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे वह देश कौनसा है॥
तैंतीस कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा वह देश कौनसा है॥

❁❁❁

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

विरजानन्द प्रकाश

लेखकः भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण

(मथुरा–निवास का आर्ष–युग)

कृष्णशास्त्री और सेठ राधाकृष्ण

(सं0 1916)

मथुरा में अतुल सम्पत्तिशाली सेठ मनिराम थे। ये जयपुर के निवासी ओसवाल जैन थे। जयपुर में इनकी साधारण स्थिति थी। घटना–क्रम से वे ग्वालियर के गोकुलचन्द पारख (ये दौलतराव सिन्धिया के कृपापात्र थे) के कृपाभाजन बनकर ग्वालियर गए और राज्य के अनेक भागों की राजस्व उगाही के ठेकेदार बनकर इन्होंने लाखों रुपया उपार्जन किया और सेठ बन गए। फिर ये मथुरा में बस गए।

सेठ मनिराम के तीन पुत्र थे, 1. लक्ष्मीचन्द्र, 2. राधाकृष्ण, 3. गोविन्ददास। इनमें से ज्येष्ठ तो जैन रहे। शेष दोनों भ्राता वैष्णव बन गए। सेठ राधाकृष्णजी को सं0 1890 (ख्री0 1833) में रंगाचार्य ने समाश्रित (वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित) किया था।

रंगाचार्य का जन्म सं0 1866 में कार्तिक कृष्णा 7 को निरुब्डन्टे (कांची मण्डल, मद्रास प्रदेश) में हुआ था। ये उत्तर भारत में आकर गोवर्धन (ब्रजभूमि) में श्रीनिवासाचार्य के रसोइया बने। उन्हीं से अध्ययन भी करते थे। सं0 1891 वैशाख कृ0 9 शुक्रवार (2–5–1836) को श्री निवासचार्य की मृत्यु होने पर रंगाचार्य उस गद्दी के स्वामी हुए।

वैष्णव धर्म के प्रभूत श्रद्धा से प्रेरित सेठ राधाकृष्ण तथा गोविन्ददास ने वृन्दावन में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बनवाकर अपने दीक्षा–गुरु रंगाचार्यको भेंट किया। पर इस छोटे मन्दिर के समर्पण से अपरितुष्ट रह विपुल धन–व्यय से द्वितीय विशाल सुवर्णमय मन्दिर, जो सेठजी का मन्दिर कहाता है, गुरुदेव के लिये बनवाया। इसी को रंगजी का मन्दिर अथवा सोने का मन्दिर भी कहते हैं।

इस मन्दिर का शिलारोपण सं0 1901 (ख्री0 1844) में हुआ था और यह सं0 1908 में (ख्री0 1851) में बन गया था। इस के निर्माण में 35 लाख मुद्रा व्यय हुई थी। इसका समर्पण–पत्र 1913 चैत्र बदि 6 बुधवार (18–3–1857) को लिखा गया था।

रंगाचारी सुप्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं। इन्होंने श्री निवासाचार्य के अतिरिक्त बंगाल के सुप्रसिद्ध नैयायिक विद्यावाचस्पति मिश्र से भी अध्ययन किया था। इन दोनों के अतिरिक्त पं0 श्री कृष्णशास्त्री से व्याकरण तथा न्याय पढ़ा था।

ये कृष्णशास्त्री कुरुक्षेत्र के समीप के निवासी थे। ये काशी तथा नवद्वीप में 40 वर्ष अध्ययन परायण रहे थे। व्याकरण तथा न्याय के ये विख्यात पण्डित थे। इन्होंने बूंदी में हाडाधिपति (बूंदी के राजा, हाडा राजपूतों में प्रमुख माने जाते थे।) द्वारा संयोजित सभा में विजयी होकर सवा लक्ष का पुरस्कार प्राप्त किया था। बूंदी से लौटते समय ये वृन्दावन में आए थे।

सं0 1913 के अन्त तक रंगाचारी समृद्धि व सम्मान के चरम शिखर तक पहुंच चुके थे। इस उत्कर्ष की अवस्था में सं0 1916 में पूज्य गुरु के दर्शन परमाह्लाद-जनक थे ही, अतः उन्होंने श्रद्धापूर्वक स्वगुरु का महान सत्कार किया होगा। रंगाचारी ने अपने विद्यागुरु को आग्रहपूर्वक कुछ समय ठहराए रक्खा था। सं0 1916 की आषाढ़ी पूर्णिमा (14-7-1859) को वृन्दावन में महान् उत्सव का अवसर रहा होगा। रंगाचारी ने तो विपुलोत्साहपूर्वक गुरुवर्य की समर्चना की ही होगी, सेठ राधाकृष्ण व गोविन्ददास ने भी स्वगुरु तथा प्रगुरु (गुरु के गुरु) की अतिशय भावपूर्वक पूजा करके अपने जीवन को सफल माना होगा।

श्रावण मास कृणंपक्ष में तो वृन्दावन में विशेष जन-सम्मर्द रहता है और सम्भवतः इस पक्ष में कृष्णशास्त्री वृन्दावन में ही रहे होंगे। श्रावण शुक्ल 3 (हरित तृतीया) से मथुरा में मेला आरम्भ होता है। इसी तिथि से कृष्णाष्टमी तक मथुरा विशेष चहल-पहलका स्थान रहती है। बाहर से सहस्रों यात्री आते हैं। ऐसे अवसर पर अपने प्रगुरु को मथुरा की श्रावणिक शोभा दिखाने तथा उनकी सेवा करने की उमंग सेठ राधाकृष्ण के भावुक मन में उठनी स्वाभाविक थी। सेठजी की प्रार्थना को स्वीकृत कर कृष्णशास्त्री ने भगवान् कृष्ण की नगरी को सुशोभित किया। कृष्णशास्त्री का यह मथुरावास दोनों ही पक्षों के लिए परम प्रीतिस्पद था, पर भवितव्यतावश दोनों ही के लिये एक चिन्ता का अवसर भी उपस्थित हो गया।

विद्या-मल्लों की युयुत्सा और सेठ राधाकृष्ण का कृष्ण-कर्म (सं0 1916)

मथुरा में सायंकालिक यमुना-नीराजना (आरती) के समय यमुना-तट पर विद्वानों तथा साधारण जनों का बड़ा संघर्ष होता है। उन दिनों अर्ध-शताधिक विद्वान् अध्यापन-सत्र चलाते थे। सहस्राधिक छात्र अध्ययन-परायण थे। उस तदानीन्तन छोटी काशी (मथुरा) में इस सायं-नीराजना के समय, विद्यारसिकों में शास्त्रचर्चा भी चल जाती थी।

एक सायं को कुछ विद्वानों में **'अजाद्युक्ति'** शब्द के समास पर शास्त्र-संगर (शास्त्रार्थ) छिड़ गया। मथुरा के अजेय विद्यामल्ल श्री विरजानन्द सरस्वती के दो उत्कृष्ट शिष्य व्याकरण विशारद श्री गंगादत्त और रंगदत्त चौबे 'अजाद्युक्ति' पर परस्पर विचार कर रहे थे और उन्होंने इसमें षष्ठी तत्पुरुष समास निश्चय किया था।

कृष्णशास्त्री मथुरा में सेठजी के अतिथि थे। उनसे सेठजी के आश्रित दो पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तथा मुरमुरिया पण्डया अध्ययन करने लगे थे। इन दोनों ने आगे बढ़कर अजाद्युक्ति में सप्तमी तत्पुरुष

उद्घोषित किया। दोनों पक्षों में मूहूर्त पर वाद-विवाद होता रहा। तदनन्र वे अपने-अपने गुरुजनों के पास प्रस्थित हुए। चौबे गंगादत्त व रंगदत्त ने श्री प्रज्ञाचक्षुजी से 'अजाद्युक्ति' के विषय में पूछा। उन्होंने कहा, षष्ठी तत्पुरुष है। दूसरे पक्ष के पण्डितों ने भी अपने अभिनव गुरुवर से विश्रान्त से आते ही 'अजाद्युक्ति' में समास पूछा, तो उन्होंने सप्तमी तत्पुरुष का समर्थन किया।

व्याकरण-दिवाकर श्री दण्डीजी के आदेश से चौबे गंगादत्त व रंगदत्त प्रतिवादियों (पण्डया मुरमुरिया तथा लक्ष्मण शास्त्री) को समझाने गये। वे दोनों उन दोनों को कृष्णशास्त्री के पास ले गए। ये बुधवर्य सप्तमी समास का ही आग्रह करते रहे और विद्याअहंकार परिचालित हो बुध-मूर्धन्य श्री विरजानन्दजी को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान कर बैठे। विपश्चिद्वर्य प्रज्ञाचक्षुजी शास्त्र-समर के अर्थ सतत संतृष्ण थे। उन्होंने कृष्णशास्त्री के उस आह्वान को अत्याह्लादपूर्वक तत्काल स्वीकार कर लिया। वाद का स्थान तथा समय भी शीघ्र स्थिर हो गए।

मथुरावासी बाहु-युद्ध (मल्ल युद्ध) दर्शन-रसिकता के लिए तो सुचिर से प्रसिद्ध रहे ही हैं। आज से एक शती पूर्व वे शास्त्र-समर दर्शन के भी उतने ही रसिक थे। अतः मथुरा का विद्या-रसिक समाजइस शास्त्रार्थ-समाचार से अतीव प्रहर्षित हुआ।

यह प्रसंग सेठ राधाकृण के लिए महती चिन्ता का कारण बन गया। यद्यपि कृष्णशास्त्री उस काल के मूर्धन्य शास्त्रार्थी विद्वानों में से एक थे, तथापि सेठ जी उन्हें विरजानन्दजी के सम्मुखीन होने देने में अतीव आतंकित थे। वे दण्डीजी की गम्भीर शास्त्र-दर्शिता तथा अनुपम मेधा से सुपरिचित थे। उन्हें ज्ञात था कि दण्डीजी मथुरा के 14 वर्ष के निवास-काल में सदा अजेय रहे हैं। अतः वे अपने प्रज्ञागुरु के अपमान का जोखम उठाने को तैयार न थे। सोच विचार कर उपाय स्थिर किया गया और उनकी ओर से प्रसिद्ध कर दिया गया कि कृष्णशास्त्री की ओर से उनके दोनों शिष्य दण्डीजी से शास्त्रार्थ करेंगे। दण्डीजी ने ये सुनकर कहलवा दिया कि 'हम तो कृष्णशास्त्री के ही सम्मुखीन होंगे। उनके शिष्य हमारे शिष्यों से शास्त्रार्थ कर सकते हैं।' अब दण्डीजी ने कृष्णशास्त्री को स्वयं मैदान में आने को बलपूर्वक आहूत किया।

इस परिस्थिति में सेठजी को पुनः अति व्यथित किया। प्रथम चाल को व्यर्थ हुआ देख अब उन्होंने दूसरा पैंतरा बदला। शास्त्रीजी की ओर से 200) रु0 प्रेषित किये गये, और दण्डीजी से कहा गया कि "तुम भी 200) रु0 जमा करो। जो शास्त्रार्थ में विजयी होगा, वह 400) रु0 पायेगा।" सेठजी ने सोचा था कि विरजानन्द 200) दे न सकेंगे और शास्त्रार्थ टल जायेगा। पर शास्त्र-समरोत्सुक मान-धन-परिव्राजकाचार्य जी ने 200) तत्क्षण भेज दिये। इन 400) में 100) सेठजी ने मिला दिये, और 500) पक्षपाती तथा स्वप्रगुरु की रक्षा के लिये सर्वविध पापाचरण के लिये प्रस्तुत सेठ राधाकृष्ण के पास जमा रहे। स्वर्गीय मुकुन्ददेव ने लिखा है, कि 'दण्डीजी तथा कृष्णशास्त्री के हस्ताक्षरयुक्त प्रतिज्ञा-पत्र भी लिखा गया था।'

शास्त्रार्थ गत-श्रम-नारायण के मन्दिर में होना निश्चित हुआ था। यह मन्दिर परिव्राजकशिरोमणि के पास-स्थान के समीप ही था। वे नियत तिथि पर अपरान्ह में समय से पूर्व शास्त्रार्थ समरार्थ जाने को तैयार हो गये थे। उन्होंने स्व-शिष्यों को उपर्युक्त मन्दिर में भेज दिया था और कह दिया था-'कृष्णशास्त्री के आते ही हमें सूचित करना।' पर उधर तो अन्य ही कार्यक्रम स्थिर हो चुका था।

कृष्णशास्त्री सभा में नहीं आये। वहां निश्चित समय से पर्याप्त पूर्व भारी भीड़ (एकस्थ) इकटठी हो गई थी। सभाध्यक्ष सेठ राधाकृष्ण ने कहा-"शास्त्री जी आने वाले हैं। जनता उत्सुक है। आप लोग ही वाद आरम्भ तो करो।' सेठजी ने विशेष आग्रहपूर्वक अनिच्छुक पं0 गंगादत्त चौबे से पूर्व पक्ष कराया और स्व-पक्षीय पण्डितों से नामाचार का शास्त्रार्थ कराके, "शीघ्र ही स्व-मण्डल द्वारा उच्चैःध्वनि में श्लोकोच्चारण व घण्टानाद कराके विरजानन्द दण्डीजी के पराजय की घोषणा कर दी। पण के 500) किसी पक्ष को न देकर, चौबों में बांट दिये। चौबे वृद्धों को 4, 4) दक्षिणा मिल गई थी। उन्होंने बाहुयुद्धार्थ सन्नद्ध पं0 गंगादत्त तथा रंगदत्त को शान्त कर दिया। दण्डीजी के शिष्य बनमाली चौबे भी उसी स्थल पर विद्यमान थे।

दण्डीजी को यह वृत्तान्त सुन बड़ा विस्मय हुआ। उनको सेठ राधाकृष्ण से इस अनीति की स्वप्न में भी आशंका नहीं हुई थी। शुद्धहृदय पुरुष सदा शठों से वंचित हुआ करते हैं। शास्त्रार्थ के दूसरे दिन दण्डीजी कलक्टर के पास गए और उनसे अपने सामने शास्त्रार्थ कराने अथवा रुपया दिलाने का अनुरोध किया, पर उसने अपनी असमर्थता प्रकट की।

कृष्ण-कर्मा राधाकृष्ण को इतने ही दुरित से परितोष नहीं हुआ। मथुरावासी तो जानते ही थे कि कृष्णशास्त्री दण्डी से डर गये हैं, अतः वे ही परास्त हैं। स्व-प्रगुरु की इस मुखकालिमा के प्रक्षालनार्थ उन्होंने लक्ष्मण शास्त्री ज्योतिषी को व्यवस्था-क्रयणार्थ काशी भेजा। पण्डितमण्डल को प्रभूत उत्कोच (घूस) देकर उन्हें भी इस पापपंक-लिप्तता में साझीदार बनाया गया। पं0 काकाराम शास्त्री, गौड़ स्वामी, काशीनाथ शास्त्री प्रभृति पण्डित-दिग्गजों ने अपने हाथों को पाप-दक्षिणा से कलुषित किया। लक्ष्मणशास्त्री ज्योतिषी काशी से व्यवस्था लेकर आ गये।

इन ज्योतिषीजी के भतीजे पं0 मूलचन्द्रजी ने सं0 2003 कार्तिक (ख्री0 1946 अक्टूबर) में मुझे बताया था कि इस व्यवस्था को लाने में तीन लक्ष रुपये हुए थे। पण्डितों को तो मनचाही दक्षिणा मिली ही, साथ ही लक्ष्मण शास्त्री भी कृतकृत्य हो गये। स्व0 पं0 मुकुन्ददेवजी के लेखानुसार उन दिनों प्रति पण्डित 100) दक्षिणा थी। इतनी भेंट देकर चार हस्ताक्षर मिलने थे-एक उस पण्डित का, और तीन उसके पुत्रों अथवा शिष्यों के। वे हस्ताक्षरकर्त्ता पुत्र अथवा शिष्य कितने ही अल्पवया हों, इसका कुछ ध्यान नहीं रखा जाता था। आगरे में पण्डित चिरंजीवशास्त्री गवर्नमेण्ट के न्याय-विभाग में थे। कार्य था अभियोगों में धर्मशास्त्र की व्यवस्था देना। 300) उत्कोच प्राप्त कर उन्होंने भी स्वहस्त इस पापपंक में साने थे।

-(शेष अगले अंक में)

मोक्ष-धर्म

लेखकः स्वामी सत्यानन्द महाराज

प्रत्येक के अन्तःकरण का साक्षी-जीवात्मा-अविद्या के कारण बद्ध होकर जन्म-जन्मान्तरों में दुःख भोगता और क्लेश पाता है। जन्म और मरण के भयंकर चक्कर से छूट कर ब्रह्मानन्द की उपलब्धि ही का नाम मोक्ष है। जीव के स्वरूप में न तो अज्ञान है और न बंध ही। यह स्वभाव में विमल है, चेतनस्वरूप है। बंध एक उपाधि-मात्र है, जो परब्रह्म के जानने से छूट सकती है।

स्वामी श्री दयानन्द जी आत्मा के स्वरूप के विषय में यों उपदेश दिया करते थे:-''जीवात्मा का ज्ञान दो प्रकार का है-एक तो स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। जैसे पानी में शीतलता तो स्वाभाविक है और उष्णता अग्निके संयोग से आती है, इसलिये यह नैमित्तिक है। ऐसे 'मैं हूँ' अर्थात् अपने होने का ज्ञान जीवात्मा में स्वाभाविक है। परन्तु जो ज्ञान, आँख, आदि इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है, वह नैमित्तिक है। जीवात्मा को नैमित्तिक ज्ञान, देश, काल और वस्तु के भेद से, तीन प्रकार का होता है। इन्द्रियों का जैसे देश के साथ हुआ, जैसे काल और जैसी वस्तु से हुआ, वैसा ही नैमित्तिक ज्ञान उत्पन्न होता जाता है। उस देश, काल और वस्तु का संयोग न रहने पर वह नैमित्तिक ज्ञान भी नष्ट हो जाता है।'' ''पर स्वाभाविक ज्ञान सदा एकरस बना रहता है।''

''आत्मा और परमात्मा के भेद तथा स्वभाव के सम्बन्ध में श्री महाराज ने कहा है:-''ईश्वर ब्रह्म को कहते हैं और ब्रह्म से भिन्न अनादि, अनुत्पन्न तथा अमृत-स्वरूप जीव का नाम जीव है। आत्मा और ये दोनों चेतन स्वरूप हैं। दोनों का स्वभाव पवित्र है, अविनाशी है और धार्मिकता आदि है।'' 'जीवन अल्प है और परमेश्वर महान् है।'

जीवात्मा कर्म करने और न करने में स्वतन्त्र है। यदि यह परतन्त्र हो तो पाप-पुण्य का भागी भी नहीं हो सकता। ''परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता ही से, यदि जीवात्मा शुभाशुभ कर्म करे तो उसके किये पाप-पुण्य फल भी उसके प्रेरक, परमात्मा, ही को भोगना पड़े। जैसे कोई जन किसी दूसरे जन को रास्ते में मार डाले तो पकड़े जाने पर शस्त्र चलाने वाले ही को दण्ड मिलता है, न कि शस्त्र को।''

कर्मों के भी अनेक भेद हैं। कई एक कर्म बंध का साधन बन जाते हैं और कई एक मोक्ष दिलाने वाले होते हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा जितने अशुभ कर्म किये जाते हैं, वे सब दुःख का कारण होते हैं। मन, वचन और काया से जो शुभ कर्म किये जाते हैं, उनके दो भेद हैं-एक सकाम कर्म और दूसरा निष्काम कर्म। जो भी धर्म युक्त कर्म सांसारिक सुख-भोग की इच्छा से किये जाते हैं, वे सकाम कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों से जीव इन्द्रियों के सुखों को पाकर जन्म-मरण के फन्दे में फंसा रहता है, उससे छूट नहीं सकता। इनका फल नाशमान होता है। जो धर्ममय कर्म केवल परमेश्वर ही की प्राप्ति के लिये विधि पूर्वक किये

जाते हैं–सांसारिक वासनाओं के लिये नहीं किये जाते हैं–वे निष्काम कर्म होते हैं। क्योंकि ये कर्म संसार के भोगों की लालसा को त्याग कर किये जाते हैं, इस कारण इन का फल भी अक्षय है।

मोक्ष की प्राप्ति के साधनों में एक ऋषि–कर्म भी है, जिसका उपदेश श्री स्वामी जी यों करते हैं– ''सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके दूसरे जनों को ज्ञान–दान प्रदान करना ऋषि–कर्म है। मनुष्य पर जितना भी ऋषिजनों का परोपकार आदि ऋण है, उसकी निवृत्ति इसी कर्म से और उनकी सेवा से होती है। प्रतिदिन जो ज्ञान का दान देना और लेना है तथा गुरुजनों को सेवा–शुश्रुषा करना है, वही ऋषि–कर्म एक दूसरे को आनन्ददायक सिद्ध होता है। यह ऋषि–कर्म–रूप ज्ञान वह देव–यान है जिसे पाकर मनुष्य फिर कभी दुःख में नहीं गिरता, औरयह कर्म पितृवर्ग की कृपा से प्राप्त हुआ करता है।

वेद ही सारे धर्मों का सार वर्णन करता है। मनुष्य को आत्मोन्नति के लियेवेद ने तीन काण्ड वर्णन किये हैं। वे ज्ञान, कर्म और उपासना हैं। उपासना काण्ड का अनुशीलन केवल मोक्ष्यार्थ किया जाता है। श्री दयानन्दजी ने उपासना का जो उपदेश दिया है, उसका बहुत कुछ उल्लेख तो भक्ति–धर्म में हो चुका है, और जो कुछ शेष है, उसका वर्णन इस बिन्दु में किया जाता है। महाराज कहते हैं–''ईश्वर की प्रार्थना करना उसके अनुग्रह को मानना है। मनुष्य के माता–पिता उसे जो भी देते हैं, वे ईश्वर के बनाये हुए पदार्थों में से ही देते हैं, परन्तु उनका कितना अनुग्रह माना जाता है, यह सभी जानते हैं। यह जिस ईश्वर के प्रदान किये सुखदायक पदार्थ भोगते हैं क्या उसका अनुग्रह नहीं मानना चाहिए? उसकी अपार कृपाओं का स्मरण करने से उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने से और परम प्रभु का आभार मानने से मनुष्य का मन आप ही आप प्रसन्न और प्रशान्त रहने लगता है। परमेश्वर की शरण लेने से मन निर्मल होता है, प्रार्थना करने से मनुष्यों को पापों से पश्चाताप हो आता है। आगे को पाप–कर्म की ओर उसका झुकाव नहीं रहता उसमें सत्य और प्रेम ये दो गुण सुदृढ़ हो जाते हैं।

''ईश्वर की स्तुति से–उसके गुणानुवाद से उसमें अपनी प्रीति बढ़ती है। ज्यों–ज्यों परमेश्वरके गुणों का ज्ञान होता है, त्यों–त्यों प्रेम अधिकाधिक होता जाता है। परमात्मा की उपासना तो आत्मा में आनन्द का विकास हुआ करता है। उससे ही पापों का नाश होता है। इसके अतिरिक्त पाप–नाश का मार्ग दूसरा नहीं है।

पाप–वासना के नाश का वेदाशय महाराज ने इन शब्दों में प्रकट किया है–''जो–जो पाप मैंने जानते हुए या अजानपन में किये हों, उनसे छुड़ाने वाला, इस संसार में, हे प्रभु! आप के बिना दूसरा कोई भी नहीं है। हमारे अविद्या आदि सब पाप छुड़ाकर हमें शीघ्र शुद्ध कीजिये। आपकी इच्छा से हमारा सारा पाप नष्ट हो जाय, जिससे हम निष्पाप होकर आपकी भक्ति में और आज्ञा पालन में तत्पर रहें।''

जो जन पाप–पाश से पार नहीं पा गये, जिन्होंने अपने आपको संयम में स्थिर नहीं किया और जिनका मन मैला है, वे आत्म–ज्ञान लाभ नहीं कर सकते। इस आशय को प्रकट करने वाले महाराज के वाक्य ये हैं:–'जो मनुष्य धर्मात्मा नहीं हैं, अविद्वान् हैं, विचार शून्य हैं, अजितेन्द्रिय और ईश्वरभक्ति–रहित हैं, उन दोषी मनुष्यों से ईश्वर बहुत दूर है। वे कोटि–कोटि वर्ष तक उसे नहीं पा सकते। ऐसे मनुष्य तब तक जन्म–मरणादि के दुःख–सागर में भटकते रहते हैं, जब तक उसको नहीं जानते।'

श्री दयानन्द जी पाप-पुण्य के प्रश्न को इतना पेचीला नहीं बनाते थे कि जिसका समझना भी असम्भव हो जाय, और पालन करना तो सृष्टि की स्वाभाविक स्थिति से सर्वथा विरुद्ध जान पड़े। उन्होंने मतवादियों के उत्तर में कहा कि-"यद्यपि दया और क्षमा अच्छे भाव हैं, तथापि पक्षपात में फंसने से दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाती है। किसी जीव को भी दुःख न देना, यह बात सर्वथा सम्भव नहीं हो सकती। क्योंकि यदि दुष्टों को दण्ड न दिया जाय, तो सहस्रों मनुष्य दुःखी हो जायँ, दुष्ट पर वह दया-अदया और क्षमा-अक्षमा बन जाय। यह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दुःख के नाश का और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कही जाती है। किसी को पीड़ा दिये बिना किसी जीव को किंचित् भी निर्वाह नहीं हो सकता।

जो लोग तालाब और सरोवर बनवाने में तथा कूप आदि के लगवाने में छोटे-छोटे जन्तुओं की हिंसा मानते हैं, उन को श्री स्वामी जी ने यह उत्तर दिया है:-"यदि माली को पाप लगता है तो अनेक जीव पत्रों, पुष्पों, फूलों फलों और छाया के आनन्द पाते हैं, इससे करोड़ों गुणा पुण्य भी तो होता है। ये लोग इस पर कुछ भी ध्यान नहीं देते यह कितना अंधेर है। सब जीवों पर सर्वथा दया करना भी दुःख का कारण हुआ करता है। यदि आपके मतानुयायी सभी जन हो जायँ और चोरों तथा डाकुओं को कुछ भी दण्ड न दिया जाय तो कितना बड़ा पाप हो जाय? इसलिये दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देने में और श्रेष्ठों का पालन करने में दया है, और इससे उलटे चलें, तो दया-क्षमा रूप धर्म का नाश ही है।"

स्वामीजी महाराज क्षत्रिय-कर्म का भी आदर करते थे। वे इस आत्म-त्याग के लिये कर्त्तव्य को धर्म ही मानते थे। क्षत्रिय-धर्म के लिये उनके समादर-सूचक वचन ये हैं-'जो राजा लोग संग्राम में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा से बिना डरे, बिना पीठ फेरे, अपने सारे सामर्थ्य से युद्ध करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं। इस कर्त्तव्य से उनको कभी विमुख नहीं होना चाहिए। शत्रु को जीतने के लिये उसके सामने से छिप जाना (भी) उचित है। क्योंकि जिस प्रकार से भी शत्रु पराजित हो, वैसा ही काम करना चाहिए जैसे सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र ही भस्म हो जाता है, वैसे (क्षत्रिय) मूर्खपन से नष्ट-भ्रष्ट होवे।" "राजा, इस प्रकार सब व्यवहारों को रीति-भांति से करता हुआ सब पापों से छूटकर परम गति-मोक्ष को लाभ करता है।"

महाराज बल के बढ़ाने और शक्ति सम्पादन करने के लिये सदा उपदेश दिया करते थे। जैसे-'सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए।"

मोक्ष-मार्ग में महाराज तप किन साधनों को मानते थे, इसका पता उनके इन वाक्यों से लगता है:-"शुद्धभाव रखना तप है। सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य कर्म करना और मन को अधर्म मार्ग में न जाने देना तप है। बाह्य इन्द्रियों का अन्याय के कर्म करने से रोकना, शरीर से, इन्द्रियों से, मन से शुभ कर्मों का आचरण करना भी तप ही है। वेदादि सच्चे शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण रखना और अन्य धर्मयुक्त कर्म को तप ही कहा जाता है।"

जिससे मनुष्य पाप-ताप से पार पा जायं, संसार-सागर को तर सकें, उसे तीर्थ कहा जाता है। मोक्ष-धर्म में ऐसे तीर्थ का वर्णन श्रीस्वामी जी इस प्रकार करते हैं-"वेदादि सत्य शास्त्रों का पठन-पाठन

पुण्य-रूप तीर्थ है। विद्वानों सन्तों का सत्संग और परोपकार-कर्म तीर्थ समझना चाहिए। धर्मानुष्ठान और योगाभ्यास भी तीर्थ गिना जाता है। निर्वैर रहना, निष्कपट होना, सत्य भाषण करना, सच्ची बात मानना, सच्चे कर्म करना और ब्रह्मचर्य का सेवन सच्चा तीर्थ है। आचार्य की, अतिथि की, माता-पिता की सेवा करना तीर्थ-रूप कर्म है। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासनादि आध्यात्मिक साधन तीर्थ हैं। शान्ति धारण करना, जितेन्द्रिय और सुशील बनना, पुरुषार्थ-परायण रहना और जो ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण तथा कर्म हैं, दुःखों से तारने वाले होने से, वे सब तीर्थ हैं।"

जिस संसार से छुटकारा पाने के लिये मुमुक्षुजन यत्न किया करते हैं, महाराज के मत में वह सर्वथा दुःखरूप नहीं हैं। वे कहते हैं:-"यदि संसार दुःखरूप होता तो इसमें किसी प्राणी की प्रवृत्ति न होती। परन्तु प्राणियों की प्रवृत्ति तो इसमें प्रत्यक्ष रूप से दीखती है, इस कारण सारा संसार दुःख रूप नहीं हो सकता। वास्तव में, इसमें सुख और दुःख दोनों हैं।"

मोक्ष-मार्ग के यात्रियों को जब तक परमात्म-देव का प्रत्यक्ष दर्शन न हो, तब तक वे बन्धन में स्वतन्त्र नहीं होते। उस परमात्मा का परम प्रत्यक्ष तो पूर्ण ज्ञानियों ही को होता है। परन्तु श्रीवचनों के अनुसार, विश्वासियों को भी सदैव प्रत्यक्ष बना रहता है। उन्होंने कहा है:-"इस सृष्टि में परमात्मा की रचना-विशेष के चिन्ह को देखकर परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है। पापाचरण की इच्छा के समय मन में जो शंका, लज्जा और भय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं। इससे भी परमात्मा के प्रत्यक्ष होने की सिद्धि होती है।"

श्री स्वामीजी मोक्ष के साधनों का वर्णन करते हुए यों उपदेश देते हैं-"धर्मयुक्त सत्य-भाषणादि शुभ कर्म करना और मिथ्या भाषणादि अशुभ कर्मों का परित्याग कर देना मुक्ति का साधन है। परमात्म देव की भक्ति से उसकी ओर खिंच जाना मुक्ति का उपाय है। उपासकजन प्रभु के परमानन्द में ऐसा जुड़ जाय कि उसके हर्ष शोक नष्ट हो जायँ, और वह परमानन्द को प्राप्त कर ले।"

"परब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है। सब में एक रस भर रहा है वही परमपद स्वरूप परमात्मा परम धाम है। उसी की प्राप्ति से जीवात्मा सारे दुःखों से छूट जाता है। नहीं तो उसके बिना जीव के लिये, परम सुख का स्थान दूसरा नहीं है।"

कई एक ज्ञानियों का मत है कि मोक्षावस्था में जीवात्मा का लय हो जाता है। उसका अस्तित्व मात्र भी नहीं रहता, वह ब्रह्म ही बन जाता है, इत्यादि। परन्तु श्री स्वामी जी मोक्षावस्था में ब्रह्म के साथ जीवात्मा की एकता लाक्षणिक मानते थे, तद्धर्मतापत्ति वर्णन किया करते थे। इस विषय के उनके वचनये हैं:-"जो जीवात्मा परमेश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव बना लेता है, वही साधर्म से, ब्रह्म के साथ एकता कर सकता है।"

मोक्षावस्था का विशेष रूप से वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है-"जीवात्मा के सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण और सामर्थ्य सब बने रहते हैं, परन्तु भौतिक प्राकृतिक-सम्बन्ध नहीं रहता। मोक्ष में भौतिक शरीर और इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते, किन्तु उसके अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण बने रहते हैं।" ❀❀❀

गतांक से आगे–

पक्षपात और द्वेष से धर्महानि

लेखकः सूरजभान आर्य

इस तरह विभिन्न धर्मवालों में नित्य झगड़े होते होते अब ये झगड़े इतने जोर पकड़ गये हैं कि एक ही धर्म के अनेक सम्प्रदायों में भी बैर विरोध रहने लगा है और अपने से भिन्न सम्प्रदाय वालों की शकल देखते ही लोगों को गुस्सा आने लगा है। जैसे कि हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदायों मे जो लोग सफेद टीका लगाते हैं उनको देखकर दूसरे सम्प्रदाय वाले कहने लगते हैं कि इन्होंने अपने माथे पर यह कौए की बीट क्यों लगाई है? इसी प्रकार जो लाल टीका लगाते हैं उन्हें देखकर सफेद टीकावाले कहने लगते हैं कि इसने अपने माथे में ईंट मारकर यह खून क्यों निकाला है? इसी प्रकार के तरह–तरह के कटाक्ष एक सम्प्रदाय वाले दूसरे सम्प्रदाय वालों पर किया करते हैं और उनको बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यही नहीं, वे साम्प्रदायिक मोह के आवेग में आकर अपने ही देवताओं की निन्दा करने लगते हैं। जैसे ब्रह्मा विष्णु और महेश की तीनों देवता सभी हिन्दुओं के हैं:, परन्तु वैष्णव सम्प्रदायवाले मुख्यतः विष्णु की पूजा करते हैं और शैव लोग शिव को मानते हैं, और इसी विशेषता के कारण आपस में लड़ाई झगड़ा करके वैष्णव लोग विष्णु को बड़ा बतलाकर शिव की निन्दा करते हैं और शैव लोग शिव को बड़ा बतलाकर विष्णु की निन्दा करते हैं।

इन साम्प्रदायिक झगड़ों की असलियत दिखाने के लिए हिन्दुओं में एक कहानी प्रसिद्ध है। वह यह है कि एक गुरु के दो चेले थे, जिनमें से एक तो गुरु की दहनी टाँग दबाता था और दूसरा बाईं। इसी अन्तर के कारण दोनों सदा तकरार रहा करती थी और दहनी टाँग दबाने वाला गुरु की बाईं टाँग की बुराई दिखलाया करता था और दहनी टाँग की तारीफ किया करता था, और इसी तरह बाईं टांग दबानेवाला गुरु की दहनी टाँग की निन्दा किया करता था और बाईं टाँग की महिमा गाता था। नित्य इसी प्रकार की तकरार रहने के कारण उनका क्रोध बढ़ते–बढ़ते अन्त को यहाँ तक बढ़ गया कि दहनी टाँग दबानेवाले ने तो गुरु की बाईं टाँग काट डाली और बाईं टाँग दबानेवाले ने दहनी टाँग काट दी और इस तरह गुरु के दोनों पैर कट गये। इस तरह उन दोंनों मूर्खों ने अपने ही हाथों से अपने गुरु का सत्यानाश कर डाला। ठीक यही हाल आजकल उन लोगों का हो रहा है जो आपस में लड़–लड़ कर और एक दूसरे की जड़ें काटकर अपने ही धर्म का घात कर रहे हैं। यह साम्प्रदायिक रोग केवल हिन्दुओं में ही नहीं है; किन्तु ईसाई, मुसलमान, जैन, सिक्ख आदि सभी धर्मों में फैला हुआ है, और सभी धर्म अनेक सम्प्रदायों में बंटकर आपस में लड़ते झगड़ते और अपनी ही जड़ें काटकर अपने धर्म को कमजोर बनाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

इस प्रकार पक्षपात और द्वेष ही धर्म का मुख्य सिद्धान्त बन जाने के कारण दुनिया के लोग अपने कल्याण की तो कुछ भी फिकर नहीं करते हैं और न अपने लिए सत्यमार्ग ही खोजते हैं, परन्तु भिन्न धर्मवालों पर बहुत ही करुणा दरसाते हैं और उनको समझाते हैं कि मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक शक्ति के कारण अन्य सब जीवों से श्रेष्ठ है, इस कारण मनुष्य मात्र का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह आंख मींचकर ही किसी बात को न मानने लगे, बल्कि अपनी बुद्धिरूपी कसौटी पर सब बातों को जांचे और जो सत्य प्रतीत हों उन्हीं को माने। इस प्रकार की बातें बनाकर सभी धर्मों के लोग दूसरे धर्मवालों के सामने उनके धर्मों के अनेक दोष दिखाने लगते हैं और इन दोषों को सिद्ध करने के लिए बड़ी-बड़ी युक्तियां लड़ाते हैं; परन्तु उनकी ये सब बातें भिन्न धर्मवालों के लिए ही होती हैं। वे न तो स्वतः उन पर एक कदम चलना चाहते हैं और न अपने सहधर्मियों को ही चलाना चाहते हैं। वे स्वयं तो आंख मींचकर जो कुछ मानते चले आ रहे हैं उसी को मानते रहना चाहते हैं, यहाँ तक कि अगर उनका कोई सहधर्मी अपनी बुद्धि की कसौटी से अपने धर्म की जांच करने लगता है, तो उसे भी यही समझाने लगते हैं कि "धर्म के मामले में अपनी बुद्धि लगाना या उसकी छान-बीन करना उचित नहीं है। ग्रन्थों में जो लिखा है उसे श्रद्धापूर्वक आंख मींचकर मानते रहना चाहिए।" इस प्रकार समझा बुझाकर या डांट दपटकर किसी न किसी प्रकार उसे विवेक बुद्धि से काम लेने से रोक देते हैं और उसे अपने प्राचीन धर्म पर कायम रहने के लिए बाध्य करते हैं। उसे अपने धर्म पर दृढ़ रखने के लिए वे कहने लगते हैं कि "धर्म की बातें ऐसी अलौकिक होती हैं कि उनमें मनुष्य की बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती है। इसलिए धार्मिक बातों में परमपिता परमेश्वर या पूज्य आचार्यों का ही पालन करना उचित है।"

इस प्रकार सभी धर्मवाले अपने सहधर्मियों को अंधश्रद्धा का पाठ पढ़ाकर अपने धर्म पर कायम रखना चाहते हैं और भिन्न धर्मियों के सामने ऐसी बातें बनाकर उन्हें बुद्धि से काम लेने का उपदेश देते हैं कि "जब एक पैसे की हंडी को भी हम ठोक बजाकर लेते हैं तब धर्म क्या ऐसी घटिया वस्तु है जिसकी बिलकुल जांच न की जाय और वह आंख मींचकर ग्रहण कर लिया जाय? नहीं, धर्म को हम लोक तथा परलोक दोनों का आधार मानते हैं, इसलिए उसकी जरा सी बात भी जाँच-परख कर ग्रहण करनी चाहिए।" इस प्रकार सभी धर्मों के लोग चालाक दुकानदार की तरह लेने के बाँट और देने के बाँट और रखते हैं और अपनी अपनी चालाकी से दूसरों को ठगा करते हैं।

इसका कारण यही है कि दुनिया के लोगों को न तो अपने लिए ही कल्याण का मार्ग ढूंढ़ना है और न दूसरों को ही सत्य मार्ग पर लगाना है, धार्मिक झगड़ों में पड़कर उन्हें तो अपनी अपनी टोलियाँ बांधनी और अपनी अपनी जिद पूरी करनी है। इसीलिए उन्हें इस बात की फिकर लगी रहती है कि हमारी टोली में से तो कोई दूसरी टोली में जाने न पावे, परन्तु दूसरी टोलीवाले हमारी टोली में अवश्य आ जावें। इसी कारण सभी धर्मों के लोग और विशेषकर धर्म के झंडेबर्दार अर्थात् पण्डित मौलवी और पादरी लोग, अपने धर्मवालों से तो एक प्रकार की बातें करते हैं और दूसरे धर्मवालों से दूसरे प्रकार की।

इन बातों का अर्थ यह निकलता है कि पृथ्वी से सच्चा धर्म तो उठ गया है, परन्तु धर्म के नाम मे अनेक झंडे अवश्य खड़े हो गये हैं कि जिनकी ओर से राज्य की तरह सभी प्रकार की लड़ाईयाँ लड़ी जाती हैं, सभी चालें चली जाती हैं और अपना अपना झंडा ऊँचा करने के सिवा और कुछ भी फिकर नहीं की जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक मतवाले पूरे पूरे दुराचारी और कुकर्मी को भी अपने झंडे के नीचे लाने में अर्थात् अपना धर्म स्वीकार कराने में बहुत हर्ष मनाते हैं, और चाहे वह पहले से भी अधिक दुराचारी और कुकर्मी हो जाय, परन्तु इसका कुछ भी खयाल नहीं करते हैं। यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमान वेश्या पर आसक्त होकर उसके साथ खुल्लमखुल्ला भोजन करने लगे और इसी कारण वह हिन्दुओं से निकाला जाने पर मुसलमानों में शामिल होना चाहे, तो मुसलमान लोग बड़ी खुशी से उसे अपनी मस्जिद में ले जाकर और यह बात उसकी जवान से कहला कर कि मुहम्मदसाहब ही परमेश्वर की आज्ञाओं को हम तक पहुँचाने वाले हैं, अर्थात् कलमा पढ़वाकर उसे मुसलमान मानने लगते हैं और एक मुसलमान बढ़ जाने के कारण बहुत खुशी मनाते हैं। परन्तु उसके वेश्यासक्त होने का कुछ भी खयाल नहीं करते हैं; बल्कि उस वेश्या को भी शाबासी देने लगते हैं कि जिसने उसे अपने ऊपर आसक्त करके उसे अपने धर्म में खींच लिया है।

इस प्रकार अपने अपने धर्म के झंडे ऊँचे रखने के पक्षपात के कारण सभी धर्मों का यह मुख्य सिद्धान्त हो गया है कि जब तक कोई मनुष्य हमारे धर्म पर विश्वास न करेगा, तब तक उसका शील, संयम जप-तप आदि कुछ भी काम नहीं आयगा, परन्तु जो मनुष्य हमारे सत्य धर्म पर विश्वास करेगा वह अपने आचरणों को सुधारे बिना भी स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी हो जायगा। इसी सिद्धान्त के कारण सभी लोग अपनी टोली वालों को तो चाहे वे कैसे ही दुराचारी क्यों न हों-धर्मात्मा मानकर उनसे प्रेम करने लगते हैं, और दूसरे धर्मवालों को चाहे वे कैसे ही सदाचारी हों। मिथ्याती, म्लेच्छ, काफिर आदि कहकर उनसे घृणा करने लगते हैं।

अपने धर्म का झंडा ऊँचा करने अर्थात् सबसे अधिक मनुष्यों को अपने धर्म में लाने का सबसे ज्यादा शौक आजकल ईसाई पादरियों को है, जो दुनिया भर में फिरते हैं और सब प्रकार के लोगों को ईसाई बनाते हैं। इसी बढ़े हुए शौक के कारण उन्होंने ईसा मसीह के उपदेश के सर्वथा विरुद्ध एक अतिविचित्र सिद्धान्त बना लिया है और उसे वे दुनिया के लोगों के सामने गा गाकर सुनाते हैं कि मनुष्य को रात दिन अनेक पाप करना पड़ते हैं, इस कारण मनुष्य ऐसा शुद्धाचरणी और सुकर्मी नहीं हो सकता है जिससे उसका कल्याण हो सके, अतएव उसको अपने उद्धार के लिए किसी दूसरी शक्ति का सहारा लेने की जरूरत है, जो मल्लाह की तरह उसका बेड़ा पार लगा दे और वह मल्लाह ईसामसीह के सिवा और कोई नहीं है। क्योंकि परमपिता परमेश्वर ने उसे खास इसलिए भेजा था कि जो मनुष्य तेरे झंडे तले ले आयगा उसका बेड़ा पार हो जायगा। इसके अतिरिक्त ईसा मसीह ने शूली पर चढ़कर उन सब लोगों के पापों का बदला भी चुका दिया है, जो उसके झंडे के नीचे आते रहेंगे या ईसामसीह का नाम लेते रहेंगे।

ईसाई पादरियों का यह भयानक सिद्धान्त यद्यपि लोगों को पापों से निर्भय करता और दुनिया में पाप ही पाप लाता है, परन्तु अपने धर्म का झंडा फहराने के शौक में पादरियों ने उक्त सिद्धान्त को इसलिए बना लिया है कि जिससे भोले लोग जल्दी से बहकावे में आ जायँ और ईसामसीह का नाम लेने लगें।

ईसाई पादरियों के सिवा अन्य धर्मों के मनुष्य भी यद्यपि खुल्लमखुल्ला यह भयानक सिद्धान्त नहीं बतलाते हैं, तथापि वे अपने अपने देवताओं की कृपासे पापों की निवृत्ति होना अवश्य बतलाते हैं। इसके सिवा अपने अपने परमेश्वर के आगे प्रायः सभी धर्मों के लोग इस आशय का गीत गाते हैं कि "हे प्रभो! मैं महापापी और दुराचारी हूँ, इसलिए अपने कर्मों के द्वारा तो मैं कभी किसी प्रकार इस संसार सागर से पार नहीं हो सकता हूँ; परन्तु तू सर्व शक्तिमान् और दीनदयालु है, तूने अनेक महापापियों और दुराचारियों को तार दिया है, इसलिए मैं भी तेरी शरण में आया हूँ और तेरी ही कृपासे पार होना चाहता हूँ।" इस प्रकार सभी धर्मों के लोग–"मेरे अवगुण मत चित्त धारो, स्वामी मोहि दीन जानकर तारो" की टेर लगाते हैं और अपने परमेश्वर की दया के भरोसे रहकर अपने आचरणों को सुधारने की कोई फिकर नहीं करते हैं। अर्थात् अब इस सिद्धान्त को प्रायः सभी धर्मों वाले मानने लगे हैं कि हमारे परमेश्वर की कृपा से हमारे पाप दूर हो सकते हैं और हम अपने आचरणों को सुधारे बिना ही उसकी कृपा से पार हो सकते हैं।

बल्कि अब अपने अपने धर्म के झंडे को मजबूत करने के लिए सभी धर्मों के लोग यह बात भी मानने लगे हैं कि केवल एक परमपिता परमेश्वर की उपासना से बेड़ा पार नहीं हो सकता है, बल्कि उसके साथ–साथ परमेश्वर के प्रतिनिधि या उस धर्म के प्रवर्तक को भी पूजना चाहिए। यदि कोई आदमी उस परमेश्वर को पूजता हो जिसको मुसलमान लोग 'खुदा' और ईसाई लोग 'गाड' कहते हैं, बल्कि 'खुदा' या 'गाड' कहकर ही उसकी माला जपता हो, और उसकी वही स्तुति गाता हो जो मुसलमान और ईसाई लोग गाते हैं, परन्तु वह मुहम्मद साहब या ईसामसीह को न मानता हो, तो मुसलमानों या ईसाईयों की निगाह से उसकी वह 'खुदा' या 'गाड' के प्रति की हुई भक्ति व्यर्थ जायगी। किसी भी काम की नहीं समझी जायगी। इसी प्रकार यदि कोई आदमी परमेश्वर की पूरी पूरी भक्ति करता हो, उसको वैसा ही सर्वशक्तिमान्, जगत्कर्ता और दयालु मानता हो जैसा कि हिन्दू लोग मानते हैं, और हिन्दुओं की ही बनाई हुई स्तुतियाँ और प्रार्थनायें पढ़ता हो, परन्तु वह श्रीकृष्ण या महादेव आदि उन देवताओं को न मानता हो जिनके नाम पर हिन्दुओं के भिन्न भिन्न सम्प्रदाय चल रहे हैं, तो हिन्दुओं की दृष्टि में उसकी वह भक्ति भी कुछ कार्यकारी नहीं होगी, अर्थात् वैष्णव लोगों के खयाल से उसकी भक्ति उस वक्त तक मंजूर नहीं होगी जब तक वह विष्णु का ध्यान नहीं करेगा, शैवों के खयाल से उसकी पूजा उस समय तक स्वीकार नहीं होगी जब तक वह शिव को नहीं मानेगा, सिक्खों के खयाल से वह उस वक्त तक पार नहीं हो सकेगा जब तक कि गुरु नानक की भक्ति नहीं करेगा और कबीर पंथियों के विचार से वह उस वक्त तक किसी योग्य नहीं बन सकेगा जब तक कि वह कबीर साहब का गुणगान नहीं करेगा।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

द्रव्य का उपयोग

लेखकः पं० माधवराव

यहाँ एक बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। धन का सदुपयोग क्या है? जब तक धन के सदुपयोग और दुरुपयोग का अन्तर हम नहीं समझ लेंगे, तब तक बहुत सम्भव है कि हम धन का व्यय अनर्थकारी कर्मों में करने लगे। यदि हमें दान करना है तो पात्रापात्र का विचार अवश्य रखना चाहिए। यदि हमें भोजन करना है तो उसकी भी सीमा नियत है। जो भोजन हमें रोगी तथा आलसी बना देता है वह किसी काम का नहीं। वस्त्र–आभूषणों का भी विचार रखना चाहिए। ऐसे कपड़े कभी नहीं पहनने चाहिए जो हमारी हैसियत के प्रतिकूल हों अथवा जिनके पहनने से हमें कोई छैल छबीला समझने लगे। वर्तमान समय के हिन्दू–समाज में बहुत सी ऐसी सामाजिक कुरीतियाँ और कुप्रथायें भरी पड़ी हैं जो उस समाज के खून को चूस चूस कर स्वयं दिनों दिन पुष्ट हो रही हैं। ज्ञान–दृष्टि के न होने से लोगों में इतना साहस नहीं है कि वे इन बन्धनों को तोड़ सकें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि जब तक ये कुरीतियाँ समूल नष्ट न की जायँगी तब तक हिन्दू–समाज मरणोन्मुख ही होता जायगा। कुरीतियों के कारण कोई मनुष्य उन्नति के मार्ग में तो अग्रसर हो ही नहीं सकता, उलटा उसे कर्ज लेकर अपना काम चलाना पड़ता है। क्योंकि वह यही चाहता है कि उसके कुटुम्बीजन उसे अच्छा और उदार समझा करें। इसका फल द्रव्य के अपव्यय के सिवा और क्या हो सकता है। ऐसी स्थिति में उचित तो यही है कि हम अपनी नाममात्र की आवश्यकताओं को कम करें और हो सके तो उनका सर्वथा त्याग करें।

अपनी आमदनी के अनुसार व्यय करने में बड़ी बुद्धिमानी की आवश्यकता होती है। जिस मनुष्य का व्यय आय से अधिक हो उसका ईमानदार होना बहुत कठिन है। इसलिए जिस मनुष्य को सच्चरित्रता की थोड़ी भी कीमत मालूम है उसे चाहिए कि वह आमदनी से अधिक खर्च कभी न करे। कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं कि थोड़ी आमदनी होने के कारण हमारा बहुत खर्च हो जाता है, परन्तु यह उनकी भूल है। सच बात तो यह है कि आमदनी जितनी बढ़ती जाती है उतनी ही कठिनाई से उससे गुजर भी होती है। इसका एक मात्र कारण यही है कि जिस परिमाण से किसी मनुष्य की आमदनी बढ़ती है उससे अधिक परिमाण से उसकी खर्च करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह इस खर्च की प्रवृत्ति को रोके और कुछ न कुछ हमेशा बना लेने का प्रयत्न करता रहे। यही बचत आगे चलकर उसकी बड़ी भारी पूँजी हो जायगी। अधिक द्रव्य कमाने में सुख नहीं होता, सुख कम खर्चऔर सन्तोष रखने में होता है। सुख प्राप्त करने के लिए मनुष्य को संयमी और स्वार्थ–त्यागी होना पड़ेगा, क्योंकि निर्जीव सोने चांदी (द्रव्य) में इतनी शक्ति नहीं है कि वह मनुष्य के लिए स्वास्थ्य खरीद सके। मनुष्य जो कुछ कमाता है वह उसकी आमदनी नहीं है, उसकी असल आमदनी वही है जिसे वह बचाता है। कोई कोई मितव्यतिता को भूल से कंजूसी समझ लिया करते हैं परन्तु मितव्यतिता कंजूसी को नहीं कहते। मितव्यतिता का अर्थ है अपनी स्थिति तथा आय के अनुसार किसी सीमा तक खर्च करना।

मितव्यतिता एक सद्‌गुण है, परन्तु कंजूसी दुर्गुण है। संसार के अधिकांश लोगों की दरिद्रता तथा पराधीनता का एक मुख्य कारण यही है कि वे "थोड़ी-थोड़ी" बचत करते रहने को तुच्छ समझते हैं। जो मनुष्य प्रतिमास दो ढाई रुपये भी बचा सकता है वह साल के अन्त में पचीस तीस रुपये का मालिक हो सकता है और जो मनुष्य अपनी लोलुपता को पूर्ण करने के लिए महीने में केवल दो ढाई रुपये नष्ट कर देता है वह साल के अन्त में उस संयमी मनुष्य के सामने गरीब का गरीब ही रह जाता है।

परन्तु इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि धन एक आवश्यक वस्तु है तथापि केवल धन से ही मनुष्य का जीवन सफल नहीं हो सकता। जिस मनुष्य में कोई भी मानसिक गुण नहीं है, जो मानसिक सदाचरण को तुच्छ समझता है, जो हृदयशून्य और भूतदयारहित है, वह यदि धनवान भी हो तो किसी काम का नहीं, क्योंकि वह धन के एक बड़े भारी 'थैले' से बढ़कर नहीं है। धन से भी अधिक मूल्यवान वस्तु मनुष्य की योग्यता या शील है, क्योंकि न तो कोई इसका नाश कर सकता है। प्रत्युत इसी से मनुष्य में धनोपार्जन की शक्ति और पात्रता आती है। धनोपार्जन की योग्यता ही धन है, धन को धन नहीं कहते, क्योंकि मनुष्य के धन का नाश हो जाता है परन्तु योग्यता नष्ट नहीं होती। इसीलिए कहा गया है कि-

न हि धनं धनमित्याहुर्धनमर्जनयोग्यता।
हीयतेहि धनं पुसां योग्यता तु न हीयते।।

अतएव पहले हमें पात्रता प्राप्त करनी चाहिए। फिर धनद्रव्य तो छाया के समान आप ही आप हमारे अनुगामी हो जायँगे।

इस लेख में कुछ और आवश्यक बातें विस्तारभय से नहीं लिखी जा सकी हैं। वे ये हैं-अपने आय व्यय का यथोचित लेखा रखना, और जीवन को संयमशील बनाना, ऋणरूपी सर्वनाशकारी अग्नि से सदैव बचना, इत्यादि, इत्यादि। ये यद्यपि अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें हैं तथापि ऐसे बहुत ही कम कामकाजी पुरुष होंगे जो इन बातों की अवहेलना करने का कुफल न देख चुके हों अथवा स्वयं न भोग चुके हों। इसलिए इन पर यहाँ अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऋणकर्ता और असंयमी पुरुष सभी जगह पाये जाते हैं और इनकी दशा सदा के लिए शोचनीय ही रहा करती है। इसलिए जो मनुष्य अपनी भविष्य आपत्तियों से बचने के लिए तथा स्वतंत्रता रूपी सर्वोत्तम मानवी स्वत्व को सचाई से प्राप्त करने के लिए कुछ द्रव्य संचय करना चाहता है, उसे सबसे पहले पाठ संयम-शील होकर ऋण न करने का सीखना पड़ेगा। द्रव्य के विषय में वाल्टन नामक ग्रन्थकार के उपदेश का संक्षिप्त सारांश यह है-

"ईमानदारी से धनवान् होने का यत्न करो, नहीं तो सन्तोषपूर्वक दरिद्री बने रहो। इस बात की खूब जांच कर लो कि तुम्हारा सब जीवन ही व्यर्थ हो जायगा। कहा है कि जिसने अपने अन्तःकरण के विवेक को खो दिया है वह यथार्थ में उन सब वस्तुओं से रहित हो चुका जो इस संसार में अच्छी समझी जाती हैं। विवेक के साथ अपने स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दो। जिस मनुष्य के पास विवेक और स्वास्थ्य दोनों हैं वही सचमुच ईश्वर की कृपा का पात्र हो सकता है। तीसरी बात है द्रव्य। इसका अनादर मत करो, परन्तु इस बात को भी मत भूलो कि मनुष्य के जीवन में धनवान् होने ही की कुछ आवश्यकता नहीं है।" ❁❁❁

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

टिंचर आयोडीन = प्लेग, फुंसी, विषनाशक

टिंचर आयोडीन का लेप करने से प्लेग की गाँठ बैठ जाती है। गिल्टी पर रुई को तर करके रखना चाहिए। इसके प्रयोग से फोड़ा, फुंसी, सूजन, चोट का दर्द तथा बिच्छू का विष भी नष्ट हो जाता है।

अण्डवृद्धि तथा गठिया में लगाने से लाभ होता है।

टी0 बी0 (तपेदिक)

प्रातः सायं गधी का दूध पिलाओ। यह अत्यन्त पौष्टिक एवं क्षयरोगनाशक है।

डब्बा (बच्चों की पसली चलना)

1. जरा–सा गोरोचन माता के दूध में घिसकर बच्चे को 2–2 घण्टे पश्चात् तब तक देते रहें जब तक पसलियाँ चलती दिखाई दें।

2. गोमूत्र में सेंधा नमक मिलाकर बच्चे को 3–3 ग्राम की मात्रा में 4–5 बार दें।

ढलका

समुद्रफेन, कत्था, भुनी फिटकरी, बड़ी हरड़ का बक्कल, रसोत, अफीम, नीला–थोथा समान मात्रा मेमं लेकर कूट–छानकर गुलाबजल में घोटकर आँखों में लगाने से ढलका बन्द हो जाता है।

तपेदिक

1. प्रथम दिन 10 ग्राम गोमूत्र पिलाएँ। तीन दिन पश्चात् मात्रा 15 ग्राम कर दें। छह दिन पश्चात् 20 ग्राम। इसी प्रकार 3–3 दिन पश्चात् 5 ग्राम मात्रा बढ़ाते हुए 50 ग्राम प्रतिदिन पिलाएँ। निरन्तर गोमूत्र के सेवन से तपेदिक दूर हो जाएगी।

2. कालीमिर्च, गिलोय सत्त्व, छोटी इलाचयी के दाने, असली वंशलोचन, शुद्ध भिलावा–सभी को बराबर–बराबर लेकर कूट–पीसकर कपड़छन चूर्ण कर लें। प्रायः मध्यान्ह और सायं, तीनों समय 2 ग्रेन (एक रत्ती) दवा मक्खन या मलाई में रखकर रोगी को खिलाएँ। अत्यन्त लाभदायक है, तपेदिक का काल ही समझो।

तिल्ली

1. जामुन का सिरका पीने से तिल्ली नष्ट हो जाती है।

2. मूली को पत्तों सहित कूटकर इसका रस निचोड़ें और 125 ग्राम रस में 1 ग्राम नौशादर मिलाकर रोगी को पिलाएँ। 8–10 दिन के प्रयोग से तिल्ली कट जाती है।

3. ताजा करेलों को कूटकर और उसका रस निचोड़कर 20–20 ग्राम दिन में तीन बार रोगी

को पिलाएँ। पुरानी–से–पुरानी तिल्ली घुल जाती है।

4. राई 10 ग्राम, सुहागा भुना हुआ 10 ग्राम, दोनों को पीसकर रखें और प्रातः सायं 2–3 ग्राम पानी के साथ फांकें। तिल्ली के लिए अतीव गुणकारी है। इसके सेवन से तिल्ली घुल जाती है और भूख तीव्र होती है।

5. यवक्षर असली और नौशादर ठीकरी, दोनों समभाग लेकर पीस लें। प्रतिदिन प्रातः 6 ग्राम चूर्ण फंकाकर ऊपर से गाढ़ी छाछ रोगी को पिलाएँ। दो सप्ताह में तिल्ली अपनी असली हालत में आ जाएगी, चाहे कितनी ही पुरानी क्यों न हो।

6. अर्क नीबू 250 ग्राम, हीरा कसीस आधा ग्राम, नौशादर 7 ग्राम, कलमी सोडा 10 ग्राम। सबको बोतल में डालकर दो दिन धूप में रख दें। बाद में 10 ग्राम सेंधा नमक मिलाकर पुनः धूप में रख दें।

चौथे दिन 10 ग्राम अर्क प्रातः भोजन के पूर्व और 10 ग्राम अर्क सायं खाना खाने से पूर्व 20 ग्राम पानी मिलाकर पिलाएँ। एक सप्ताह में पुरानी–से –पुरानी तिल्ली दूर हो जाएगी। अनुपम तथा अति गुणकारी औषधि है।

तुतलापन

1. जो व्यक्ति अटक–अटककर बोलते हैं, बीच में पर्याप्त समय तक अटके रह जाते हैं वे निम्न प्रयोग से लाभ उठाएँ।

रात्रि में सोते समय 2 ग्राम बारीक भुनी हुई फिटकरी मुख में रखकर सो जाया करें। एक मास के निरन्तर सेवन से तुतलापन दूर हो जाएगा।

2. जो बालक तुतलाकर बोलते हैं उनकी जिह्वा पर तनिक–सा सत्यानाशी का दूध लगा दिया करें। कुछ दिन लगाते रहने से बच्चा साफ बोलने लगेगा। (सत्यानाशी को काटने पर जो पीला पदार्थ निकलता है वही सत्यानाशी का दूध है।)

3. दालचीनी मुँह में रखकर चबाएँ।

4. बादाम की गिरी 9, कालीमिर्च 9, दोनों को पानी में चटनी की भांति घिसें और उसमें जरा–सी मिश्री मिलाकर चाटें। जिह्वा के तुतलाने में लाभदायक है।

5. हकलाते और तुतलाते बच्चे आंवला चबाएँ तो तुतलाहट मिटती है। जीभ पतली होकर बोली साफ आने लगती है।

दन्तशूल

1. नौशादर और सोंठ, दोनों समभाग लेकर पीस लें और दांतों पर मलें। खोखले स्थान में भरने से दांत के कीड़े और दांत का दर्द दूर होता है।

2. नीलाथोथा लेकर फुला लें और तत्पश्चात् पीस लें। यह एक ग्राम चूर्ण ठण्डे पानी में घोलकर गरारे करें। इसके प्रयोग से दन्तशूल और दन्त–कृमि नष्ट हो जाते हैं।

3. कालीमिर्च पीसकर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर 2 ग्रेन औषधि जरा-से पानी में घोलकर कान में टपका दें। दन्त-पीड़ा तुरन्त मिट जाएगी।

जब पीड़ा मिट जाए तब कान में 3-4 बूंद घी टपका दें। इससे कान की सूजन दूर हो जाएगी।

4. जरा-सा कपूर लेकर दर्दवाले दांत पर रखकर दबा लें। यदि दाढ़ में सूराख हो तो उसमें भर दें। दर्द दूर हो जाएगा।

दन्त-मंजन

1. दालचीनी, कालीमिर्च, धनिया भुना हुआ, नीलाथोथा भुना हुआ, कपूरकचरी, सेधा नमक, मस्तगी और चोबचीनी, प्रत्येक 10 ग्राम। पपड़िया कत्था 20 ग्राम, माजूफल 5 नग। सबको कूट-पीसकर मंजन बना लें।

इस मंजन का प्रयोग करने से दन्त-रोग तो दूर होंगे ही, बाल जीवनभर सफेद नहीं होंगे।

2. अजवायन खुरासानी, बायबिडंग, अकरकरा, तीनों को बराबर-बराबर लेकर कूट-पीसकर मंजन बना लें।

प्रतिदिन इस मंजन का प्रयोग करने से दांत स्वच्छ और दृढ़ होते हैं। 3-4 बार मलने से दांतों की पीड़ा शान्त होती है।

3. सफेद फिटकरी को बारीक पीस लें। 250 ग्राम फिटकरी में 25 ग्राम गेरू मिला दें। इस मंजन से दांतों से रक्त निकलना, पस आना, हिलना तथा दांतों की गन्दगी आदि रोग दूर होते हैं।

4. नीम के पत्ते जला लें। 100 ग्राम जले हुए पत्तों में 10 ग्राम सेंधा नमक भी मिला लें। प्रतिदिन इस मंजन के करने से दांत उज्ज्वल एवं दृढ़ होते हैं।

5. सोंठ, लौंग, कालीमिर्च, प्रत्येक 20 ग्राम, सुपारी पुरानी 25 ग्राम, तम्बाकू के पत्ते 25 ग्राम, नमक सेंधा 200 ग्राम, गेरू 250 ग्राम, इन सबको कूट-पीसकर मंजन बना लें। इस मंजन के प्रयोग से हिलते दांत मजबूत होकर मोती की भांति चमकने लगते हैं।

दन्त-रोग

1. लौंग 10 ग्राम, कपूर 1 ग्राम।

दोनों को बारीक पीसकर दांतों पर मलने से दांतों के सब रोग और दर्द आदि नष्ट होते हैं।

2. मौलश्री की छाल सूखी हुई 250 ग्राम को कूट-पीस और कपड़छन करके मंजन बना लें। इसे प्रातः और सायं दांतों पर मलें। आधा घण्टा बाद कुल्ला करें। दातं बुढ़ापे तक मजबूत रहेंगे।

3. मौलीश्री की दातुन करने से हिलते हुए दांत दृढ़ होते हैं, पायरिया दूर होता है। मौलश्री में दन्त रोगों का नष्ट करने की अद्‌भुत शक्ति है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है-**'दन्ता भवन्ति चपलाऽपि च वज्रतुल्यः।'** दांत मोती जैसे श्वेत और वज्र के समान चमकने लगते हैं।

4. सीप को जलाकर थोड़े नमक के साथ बारीक पीस-छानकर रखें और मंजन की भांति

प्रतिदिन दांतों पर मलें। दांतों की मैल साफ होकर दांत मोती के समान चमकने लगते हैं।

5. सोडा बाई कार्ब (खाने का सोडा) और हल्दी, दोनों को मिलाकर मंजन करने से दांतों के अनेक रोग दूर हो जाते हैं।

6. सेंधा नमक और सरसों का तेल, दोनों को मिलाकर मंजन करने से पायरिया, दांतों का हिलना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

7. जामुन की लकड़ी को जलाकर कोयला बना लें। फिर इस कोयले को पीसकर मंजन की भांति प्रयोग करें। इसके प्रयोग से दांत चमकीले होते हैं। दर्द भी दूर होता है।

8. दन्त-रोगों पर लाक्षादि तेल की अथवा अर्क कपूर की फुरहरी लगाएँ।

दमा की अद्‌भुत दवा

1. धतूरे का 1-1 बीज 8 दिन तक प्रातः पानी से निगल लें। दूसरे सप्ताह दो-दो बीज लें। इसी प्रकार प्रति सप्ताह एक-एक बीज बढ़ाते हुए पांचवें सप्ताह 5-5 बीज प्रतिदिन लें। दमा कितना ही पुराना हो मिट जाएगा।

2. जरा-से गुड़ में आक (अर्क, आकौड़ा) के दूध की 2 बूंद मिलाकर देने से दमा 5-7 दिन में ही गायब हो जाता है।

नोट– इस दवा से वमन होता है और जी घबराता है, धैर्यपूर्वक सहन करें। घी, दूध, मक्खन, मलाई आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करें। गुड़, तेल, खटाई, लालमिर्च आदि हानिकारक वस्तुओं का परहेज करें।

3. आक के 25 ग्राम बन्द फूल लेकर आधा किलो गोदुग्ध में उबालकर छाया में सुखा लें। इसमें 25 ग्राम अजवायन खुरासानी पीसकर मिला लें।

प्रतिदिन प्रातः आधा ग्राम दवा शहद में मिलाकर चाटें।

नोट– दूध को फेंक दें।

4. सिन्धी भाषा के नाम से पटपेरू अथवा कामा नमक घास का शाक खाने से 3 दिन में ही श्वास-कष्ट दूर हो जाता है।

5. करील की लकड़ी की भस्म 1 ग्राम प्रतिदिन पान के साथ खाने से दमा रोग दूर हो जाता है।

-(शेष अगले अंक में)

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2017 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष **2017** तथा **2018** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें। वर्ष 2017-2018 का वार्षिक विशेषांक **शान्ता** आप तक पहुँचाया जा चुका है। अतः आपसे पुनः निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भेजकर अपनी प्रत्येक माह की पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहें। आशा है पाठकगण अविलम्ब शुल्क जमा करेंगे।

-व्यवस्थापक

हंसः

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
दिन हजारों हो गए तुमको सुनो हे हंस सुन्दर !
पंख खोले स्वर्ग ही की ओर यों उड़ते निरन्तर।
किन्तु तुम में और दिव में कम हुआ कुछ भी न अन्तर।
दूर होता ही गया वह, तुम बढ़े ज्यों ज्यों निकटतर।
है तुम्हारी चाल न्यारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
बन्धनों में भी लगाए प्रगति को अपने गले तुम,
तज त्रिविष्टप और मानस, यातनाओं में जले तुम,
जन्म ही से उत्पतन का दूध पी मानो पले तुम,
जो कि मंजिल पर पहुँच कर भी सदा उड़-उड़ चले तुम।
व्योम के सुन्दर विहारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
हैं अतुल मोती तुम्हारे मानसर ही के किनारे,
स्वावलम्बी हो, नहीं परलोक के तुम हो सहारे,
संग-संग समस्त दिव के देवता फिरते तुम्हारे,
तुम स्वयं ही स्वर्ग हो, तुम से नहीं कुछ स्वर्ग न्यारे,
किन्तु फिर भी तुम भिखारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
युक्त हो अमरत्व से भी, युक्त हो अजरत्व से भी,
युक्त हो पूर्णत्व से भी, युक्त हो देवत्व से भी,
सूत्र जो सब सूत्र का है युक्त हो उस तत्त्व से भी,
और यह होते हुए भी तुम नये मनुजत्व से भी-
क्यों तुम्हें निज भूल प्यारी ?

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
लोभ में परलोक के निज लोक ही उजड़ा तुम्हारा,
बुद्धि के मद में मिटा अन्तःकरण का ज्ञान सारा,
और व्यापक ज्ञान की धुन में मिटा व्यक्तित्व प्यारा,
अन्त की सुधि में गया छिप 'आदि' का वह सांध्यतारा-
हो गई यह रात भारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
काम बनने का नहीं जब तक नहीं निष्काम होगे,
नाम होने का नहीं जब तक नहीं गुमनाम होगे,
प्रगति होने की नहीं जब तक न पूर्ण विराम होगे,
मार्ग मिलने का नहीं जब तक नहीं तुम वाम होगे–
बहिर्मुख पथ के पुजारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
सब गुणों से युक्त भी होते हुए गुणहीन निकले,
इन्द्र और कुबेर भी होते हुए तुम दीन निकले,
ज्ञानमय होते हुए अज्ञान में तल्लीन निकले,
मुक्त भी होते हुए परतन्त्र और अधीन निकले–
शक्ति सब तुमने बिसारी।

है कहाँ मंजिल तुम्हारी ?
बुद्धि से कह दो कि 'तू अब सर्वथा निरुपाय हो जा'
शक्ति से कह दो कि 'तू अब सर्वथा असहाय हो जा'
ध्यान से कह दो कि 'तू अन्तर्ध्यान हो मृतप्राय हो जा'
और अपने से कहो 'तू ब्रह्म का पर्याय हो जा'
कर समर्पित सिद्धि सारी।
है यही मंजिल तुम्हारी॥

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 अगस्त	लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	1 अगस्त
गुरू हरकिशन	6 अगस्त	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	6 अगस्त
रानी अवन्तीबाई लोधी	16 अगस्त	रविन्द्रनाथ टैगोर	8 अगस्त
गोस्वामी तुलसीदास	17 अगस्त	खुदीराम बोस	11 अगस्त
		मेडम भिकाजी कामा	13 अगस्त
9 अगस्त	**भारत छोड़ो आन्दोलन (1942)**	वीर गुलाबसिंह	14 अगस्त
15 अगस्त	**स्वतंत्रता दिवस (72वां)**	मदनलाल ढींगरा	17 अगस्त
19 अगस्त	**विश्व फोटोग्राफी दिवस**	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	18 अगस्त
26 अगस्त	**रक्षाबन्धन**		

प्राचीन आर्य

लेखक: आचार्य धर्मेन्द्र

आज मैं आपके सामने जो कुछ लिखना चाहता हूँ उस पर बहुत समय से विस्तृत आलोचनाएं प्रारम्भ हो चुकी हैं, और उनके भिन्न-2 परिणाम प्रकाशित हुए हैं। हिन्दु लोग प्राचीन आर्य और उनके इतिहास के सम्बन्ध में पुराणों का नाम लेना पर्याप्त समझेंगे। यदि भागवत् भगवान् कृष्ण के पापों का वर्णन करती है तो वे उन पापों को ही महत्व सूचक मान उनकी उपासना करते हैं। कल्पित कथाओं से भी गिरे पुराण धर्मग्रन्थ हैं। वे ही इतिहास की पुस्तक है। इसीलिये इनका मत विचारक समुदाय में आदृत होना तो दूर रहा विचारणीय भी नहीं समझा जाता। हमें भी इन पर विचार करने का अवकाश नहीं। दूसरे प्राचीन आर्यों के आलोचक पश्चिमीय हैं। उन्होंने प्राचीन कालिक संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक स्वाध्याय कर अपना परिणाम निकाला है, मुझे उन विचारों या सम्मतियों पर बहुत कुछ वक्तव्य है तथापि मैं यहां इतना कहना चाहता हूं कि बहुत काल तक की पाश्चात्य आलोचना ने यही परिणाम निकाला था कि प्राचीन आर्य असभ्य और जंगली थे, और इसीलिये हम उनकी वास्तविक स्थिति से परिचित होने में असमर्थ हैं। इससे भी अधिक दु:ख का विषय यह था कि उन्हीं कल्पनाओं पर भारतीय इतिहास का प्रारम्भ प्राय: 10 शताब्दियों से माना गया।

इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में राम, कृष्ण, बुद्ध पर एक-2 पाठ देने के पश्चात् महमूद गजनवी के आक्रमणों का वर्णन प्रारम्भ होता है। भारतीय ऐतिहासिक विद्यार्थीगण के विषय में इससे अधिक और क्या बात हो सकती है कि उन्हें इतिहास के पाठ में महमूद गजनवी के सारे आक्रमण संख्यात्मक तथा घटनात्मक सुनाये जांय परन्तु पराक्रमशाली वीरवर विक्रम के वृत्त से नितान्त वंचित किया जाय, वे अकबर के पाठ में पढ़ेंगे कि उसने इस भांति प्रजाप्रेम किया, परन्तु क्या उन्हें 'राम' के इतिहास में बताया गया कि-

न तस्कर भयं तत्र इत्यादि-इतना ही नहीं इंगलिश इतिहास का विद्यार्थी शेक्सपीयर के नाटकों की नामावली को सुना सकता है वह रेखागणित के पाठ में प्रारम्भिक दिन उल्कैदिस और पाइथागोरस का नाम जपता है। तथापि भारतीय इतिहास का भारतीय विद्यार्थी अपनी जाति और देश के प्राचीन अनन्य रत्न, सर्वस्वभूत उपनिषद् और दर्शनों का नाम न जानकर कदाचित् वेदों से अपरिचित ही होगा। क्या यूरोपीय आलोचना के बाद भी बताया गया कि ज्यामिट्री में जिस 29वीं साध्य के आविष्कार से गणित सृष्टि में पाइथागोरस आदृत है वही साध्य ऋषियों ने बहुत पूर्व सुल्व-सूत्रों में लिखी थी। आज रेखागणित के आर्यों के प्रवर्तक होने की अन्तिम आलोचना के बाद भी वह अनुपम गुण भी हमें यूनानियों से सम्बद्ध बताया जाता है। क्या अच्छा होता कि उस विद्यार्थी को जो औरंगजेब के धर्म

पक्षपात के जघन्यतम अत्याचार को पढ़ता है, एक बार महात्मा बुद्ध का दीनों के प्रति अश्रुप्रवाह दिखाया जाता। कि जो मनुष्यों को सारी कठिन-2 यन्त्रणाओं और उत्कोचों से बढ़कर आकर्षित कर सकता था।

तृतीय आलोचना कोई अद्‌भुत बात नहीं है उसे हमें यूरोपियन आलोचना की प्रत्यालोचना कह देना पर्याप्त होगा जो कि अब हमारे लिये सबसे अधिक प्रामाणिक है उस प्रसिद्ध आलोचक या संशोधक का नाम लेना अनावश्यक है। हम उसे मृतप्राय आर्य सभ्यता का चन्द्रोदय कह सकते हैं। अभी 20वीं शताब्दी का प्रारम्भ था कि भारत में नया जीवन उत्पन्न होने लगा। राज्य के परिवर्तन से आचार सम्बन्धी असाधारण परिवर्तन आवश्यक था भारत वर्ष का सम्बन्ध सारे संसार से था जातीय संशोधन का प्रारम्भ हुआ प्रातः स्मरणीय 'राम मोहन' और 'विद्यासागर' के जन्म से बंगभूमि सुभूषित हुई थी, परन्तु सबसे बढ़कर एक असाधारण घटना थी, मैं उसके विषय में अपने आवेग को नहीं कह सकता। "हिन्दू लोग हिमालय में कैलाश की चोटी पर कैलाशपति शंकर का निवास बताते हैं निःसन्देह 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यदि कोई शिवोपासक वहां जाता तो उसे भूतिसितांग नहीं हिमालय सर्वांग मूलशंकर का दर्शन होता। वस्तुतः प्राचीन आर्यों की परिस्थिति को बताने वाले हमारे गुरु ऋषि दयानन्द हैं। साधारण भूगोल में सभ्यता युग बहुत नवीन समय में स्थित हुआ। उसी का आधार यूरोपियन हमारे साहित्य के विचार में भी रखते हैं परन्तु यदि हम उन्हीं पर विचार करें तो मैं बलपूर्वक कहूंगा कि भारत का या प्राचीन आर्यों का शिर सबसे ऊंचा उठा रहेगा। सर रमेशचन्द्र दत्त ने यूरोपीय विद्वानों का पूरा अनुकरण किया है उन्होंने स्वतः अपनी भूमिका में ऐसा ही लिखा है कि मैंने कोई अपूर्व खोज नहीं की किन्तु मैक्समूलर आदि विद्वानों के अन्वेषण को क्रमपूर्वक इस पुस्तक में रख दिया है।

तथापि उनकी प्राचीन भारत की सभ्यता नामक पुस्तक आर्यों को यूनान और मिश्र से कहीं सम और कहीं उच्च स्थान देती है कदाचित् ऋग्वेद में उन्हीं के कथनानुसार अनेक सूक्तों में आर्यों ने अपने शत्रु दस्युओं (उनकी सम्मति में उत्तरी भारत से निकली हुई एक विजित जाति) के वध के लिये आराध्य अग्न्यादि की स्तुति की हो। कृषक आर्यों ने ऋग्वेद में अनेक सूक्तों में शस्य सम्पन्न क्षेत्रों की स्तुति गायी हो पशु पालन के अनेक विधान हों। परन्तु आर्यों के आर्थिक विवादशून्य आर्ष और अर्वाचीन साहित्य ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि अपने निर्माण के समय से आज तक वह उच्च सिंहासन पर विराजमान है। यूरोप में सर विलियम जोन्स भारतीय साहित्य के कदाचित् प्रथम अनुसंन्धान कर्त्ता थे उन्होने जब कालिदास के शकुन्तला नाटक को देखा तब वह कालिदास की प्रतिभा और कल्पना पर आश्चर्यचकित हो गये। ज्यों ही इसका इंगलिश अनुवाद हुआ एक स्वर से कालिदास को भारतीय शेक्सपीयर कहा गया। क्या अब वह निर्विवाद नहीं है कि भारत में यूरोप की अपेक्षा शताब्दियों पूर्व शेक्सपीयर उत्पन्न हुये थे। पुनः विलियम जोन्स ने मनुस्मृति का इंगलिश अनुवाद किया हम इस बात पर किंचित विचार करना

नहीं चाहते। मनुस्मृति के राज नियम अब भी अपनी उच्च स्थिति रखते हैं उनके प्रक्षिप्त भागों में शूद्रों के साथ कदाचित बुरा वर्ताव अथवा अन्य दोष विद्यमान हों। परन्तु मनु का धर्मशास्त्र निःसन्देह उच्च राजनीति का परिचायक है। उसके विषय में समय पर विवाद उठा यूरोपीय विद्वानों की भिन्न सम्मतियां हैं परन्तु वे सब अपने पक्ष में कोई प्रबल युक्तियां नहीं रखते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुस्मृति रामायण और महाभारत से प्राचीन है, क्योंकि मनुस्मृति के श्लोक उपयुक्त ग्रन्थों में उद्धृत हैं। रामायण के लिये उसके समय की सम्मति देना असम्भव प्राय है परन्तु महाभारत कासमय निर्विवाद 5000 वर्ष है क्योंकि आज तक युधिष्ठिर सम्वत् विद्यमान् है। जो यूरोपीय विद्वान् महाभारत का समय 1300 या 1400 वी0 सी0 नियत करते हैं यह उनकी कल्पना मात्र है। महाशय रमेशचन्द्र दत्त ने कैसी अद्‌भुत कल्पना की हैं वे कहते हैं कि बुद्ध ईसा से 600 वर्ष पूर्व हुये और महाभारत से बुद्ध तक 35 राजाओं का उल्लेख मिलता है यदि प्रत्येक ने 20 वर्ष राज्य किया तो 35x20=700 700+600॥ 1300 वी0 सी0 महाभारत का समय है। इस कल्पना की यथार्थता नितान्त स्पष्ट है। लोकमान्य तिलक ने ब्राह्मणों का समय कई सहस्र वर्ष पूर्व भले प्रकार सिद्ध कर दिया है। उनमें भी मनुस्मृति की चर्चा विद्यमान हैं। इस प्रकार 7 या 8 सहस्र वर्ष पूर्व मनुस्मृति की स्थिति निःसंदिग्ध है चाहे उसका कोई समय हो। सभ्य महोदय? जबकि अन्यत्र अत्यन्त प्राचीन मिश्र के राज्यों की स्थापना बड़ी उदार सम्मति से 5 या 6 सहस्र वर्ष की मान लेते हैं उससे भी पूर्व आर्यों के पास मनुस्मृति जैसे सुन्दर राज नियम विद्यमान थे।

आर्यों की प्राचीन सभ्यता को उद्‌देश्य कर मि0 टाड साहब अपनी भूमिका में लिखते हैं कि भारत में सूर्य चन्द्र वंश सब राज्यों से पुराने हैं। डबलू जोन्स कहते हैं कि मनु के पुराने राज नियम सोलन और लाइक गरस से भी पहले थे। डबलू जोन्स और टाड यह दोनों पाश्चात्य विद्वान् प्राचीन आर्यों को राजकीय इतिहास में उच्च स्थान देने के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं। अभी यूरोपीय आलोचना होती चली गई और रेखागणित शास्त्र में सम्पूर्ण महत्व हमारे पूर्वजों को मिला। कोलब्रूक साहब ने आर्यों के गणित की आलोचना की हमने पूर्व कहा है कि रेखागणित का विधान सुल्व सूत्रों में था। वह यज्ञ के लिये याज्ञिकों द्वारा सिद्ध किया गया। हाँ यह हम मानते हैं कि आर्यों से सीख कर यूनानियों ने रेखागणित की बड़ी उन्नति की तथापि आविष्कर्ता आर्य हैं। बीजगणित की अनेक आलोचनाओं के परिमाण ने आर्यों का आविष्कर्तृत्व सिद्ध कर दिया। अरब वालों ने यूरोप को अंकगणित शास्त्र की शिक्षा दी। क्या उन लोगों का अंकों को हिन्दसः कहना आर्यों के महत्व का दृढ़ प्रमाण नहीं है। किम्बहुना मोनियर विलियम स्वतः कहते हैं कि अंकगणित का सबसे प्रथम प्रयोग आर्यों द्वारा हुआ। ज्योतिष के सम्बन्ध में उसका वेदांगत्व आर्यों की अभिज्ञता का परिचायक है परन्तु सर रमेशचन्द्र दत्त ने अब यूरोपीय आलोचनाओं के आधार पर पूर्णतया सिद्ध कर दिखाया कि ज्योतिष के मुख्य प्रवर्तक आर्य थे। आज से 14 या 15 शताब्दी पूर्व

भारत में आर्य भट्ट और ब्रह्मगुप्त सदृश ज्योतिषी उत्पन्न हुये थे। जिन प्रश्नों को यूरोप के विद्वान् अनेक बार निष्फल हो 17 और 18वीं शताब्दी में हल कर पाये उन्हें ब्रह्मगुत और भास्कराचार्य ने 7वीं एवं 12वीं शताब्दी में सिद्ध किया था।

सर रमेशचन्द्र की पुस्तक में कई प्रश्न दिखाये गये हैं कि जिनके सिद्ध करने में यूरोप के विद्वानों को अब तक कठिनता पड़ी, उन्हें प्राचीन आर्य गणितज्ञों ने सिद्ध किया था। गणित शास्त्र पर प्राचीन आर्यों के सम्बन्ध में अनेक बातें हैं जिनका हम सविस्तार वर्णन नहीं कर सकते। यह दशा गणित और ज्योतिष की है। साथ ही में आर्यों ने जो उन्नति शब्दशास्त्र में की, वह नितान्त अपूर्व थी। महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण को फिलासफी के सांचे में ढाल दिया। परन्तु इससे बढ़कर मुझे कहना चाहिये कि अष्टाध्यायी का रचना और बुद्धिचातुर्य में रेखागणित से उच्च स्थान है। रेखागणित के तुल्य सूत्रों से अष्टाध्यायी में शब्द सिद्धि होती है परन्तु अष्टाध्यायी का महत्व यह है कि रेखागणित में हम एक साध्य को अनेक साध्य लगाकर सिद्ध करते हैं और एक स्थान पर अनेक साध्य लग सकते हैं। तथापि हम उसी को लगाते हैं जिससे हमारा इष्ट सिद्ध हो। तथापि पाणिनीय, शब्द सिद्धि में अनिष्ट सूत्र की प्राप्ति भी नहीं होने देता यह कितनी विचित्र बात है। रेखागणित के भवन में प्रविष्ट पुरुषों को सब द्वार खुले हैं कि किस मार्ग से निकले इसका निर्द्धारण उन पर निर्भर है अन्यथा अनिष्टापत्ति हो। परन्तु व्याकरण भवन में सब द्वार खुले हैं तथापि उसके शिल्प चातुर्य से प्रत्येक अपने इष्ट मार्ग से ही निकलता है।

इसीलिये पाणिनीय अष्टाध्यायी को देखकर बीवर और गोल्डस्टकर भूयो भूय चकित होते हैं यदि हम आर्यों की उन्नति में वैद्यक पर विचार करें, तो भी उनका सिर ऊँचा उठा हुआ है। बहुत समय तक वैद्यक का यश भी यूनानियों को मिला।

शनैः शनैः इसका निर्णय होने लगा डाक्टर वाइज कहते हैं कि 'हम लोग वैद्यक शास्त्र की पहली प्रणाली के लिये हिन्दुओं के ही अनुगृहीत हैं। डाक्टर विलसन ने हिन्दू वैद्यक के वास्तविक स्वरूप दिखाने का बड़ा प्रयत्न किया उन्होंने आयुर्वेद को 8 भागों में विभक्त किया है जिनको सविस्तार पढ़ने से हम वैद्यक सम्बन्धी उपवेद का महत्व एक विदेशी के मुख से सुन सकते हैं। प्राचीन शल्यचिकित्सा अब पूर्ण तथा प्रमाणित हो चुकी है। गोण्डाल के ठाकुर साहब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में प्राचीन वैद्यक का महत्व प्रसिद्ध किया है। सर रमेशचन्द्र दत्त कहते हैं कि इससे बढ़कर क्या प्रसन्नता हो सकती है कि आजकल सब ओर विदेशी डाक्टर हमारी औषधियां करते हैं। किन्तु आज से 22 सौ वर्ष पूर्व सिकन्दर ने अपने यहां हिन्दू वैद्यों को इसलिये बुलाया कि वे उन रोगियों की चिकित्सा करें कि जिन्हें यूनानी वैद्य अच्छा नहीं कर सके। यद्यपि अभी हिन्दू वैद्यक के विषय में बहुत कुछ वक्तव्य है तथापि अब हमें मिस्टर वर्नफ का नाम याद आता है जिन्होंने जेन्द और संस्कृत के बीज तारतम्यात्मक शब्द व्यत्यय दिखा आर्य जाति का मुख उज्जवल कर दिया हमें सबसे अधिक उनका कृतज्ञ होना चाहिये।

–(शेष अगले अंक में)

जगत को आर्य बनाओ

रचयिताः पं० गन्दलाल निर्भय, पलवल (हरि०)

ऋषियों का यह देश था, आर्यावर्त्त महान।
देता था संसार को, पावन वैदिक ज्ञान॥
पावन वैदिक ज्ञान, करे कल्याण जगत का।
वेद ज्ञान से हुआ, सुनो! उत्थान जगत का॥
गौतम, कपिल, कणाद, हुए ऋषि वैदिक ज्ञाता।
सच्चे ईश्वर भक्त, सन्त जीवन निर्माता॥ 1॥

जगत गुरु दयानन्द ने, किया गजब का काम।
वेदों का प्रचार कर, किया जगत में नाम॥
किया जगत में नाम, मौत का खौफ न खाया।
पी-पी के करके जहर, सन्त ने जगत जगाया॥
झेले भारी कपट, नहीं योगी घबराया।
ऐसा अद्‌भुत सन्त, नहीं दुनियां में आया॥ 2॥

आर्यवर्त्त में हो गया, पाखण्डियों का जोर।
वेद विरोधी नास्तिक, मचा रहे हैं शोर॥
मचा रहे हैं शोर, पाप-पापी करते हैं।
हुए स्वार्थ में लिप्त, न ईश्वर से डरते हैं॥
यहां हजारों धूर्त, पड़े हैं अब जेलों में।
फिर भी लाखों मूढ़, सम्मिलित हैं चेलों में॥ 3॥

बुराड़ी दिल्ली का सुनो, समाचार धर ध्यान।
मरे अंधविश्वास में, ग्यारह जन नादान॥
ग्यारह जन नादान, ढोंगियों ने मरवाए।
वेदों का सन्देश, अभागे समझ न पाए॥
व्यर्थ न देते जान, वेद पथ अगर जानते।
ऋषि दयानन्द महान, सन्त को अगर मानते॥ 4॥

जागो प्यारे आर्यो! करो वेद प्रचार।
बिना वेद प्रचार के, होगा नहीं सुधार॥
होगा नहीं सुधार, समझ लो धर्म साथियो!
यदि चाहे कल्याण, करो शुभ कर्म साथियो!!
देव दयानन्द बनो, जगत में धूम मचाओ।
'नन्दलाल' बन आर्य, विश्व को आर्य बनाओ॥ 5॥

❀❀❀

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-
इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
I F S C Code- IOBA 0001441
'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341
दान हेतु- 'श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

कहो कौन गाये ?

दयानन्द के गीत गौरव गुणों को,
हमीं जो न गायें कहो कौन गाये? ॥ 1॥

लिये वेद की पावमानी मशालें,
अविद्या अमा को भगाता रहा जो।
सजाए हुए प्राणदात्री प्रभाती,
सदा भारती को जगाता रहा जो।
उसी के पदों की बनी पद्धति में,
हमीं जो न आयें, कहाँ कौन आये? ॥ 2॥

विरोधी मतों के उठे ज्वार में भी,
तरी सत्यता की तराता गया जो।
पिलाता सुधा घातकों को अकेला,
चला चाँद सा मुसकराता गया जो।
उसी के लिये वन्दना के स्वरों को,
हमीं जो न लायें कहो कौन लाये? ॥ 3॥

लिये विश्व-कल्याण की कामनायें,
दिया 'त्रित्व' का था उजाला उसी ने।
'अदीना' सदा 'स्याम' स्वाधीनता का,
दिया मन्त्र प्यारा निराला उसी ने।
उसी को पताका लिये व्योम-भू में,
हमीं जो न छायें कहो कौन छाये?॥ 4॥

मिटाने यहाँ देव सम्पत्तियों को,
किला आसुरी शक्ति ने था बनाया।
महाप्राण ने तर्क का वज्र फेंका,
क्षणों में उनसे धूलि में था मिलाया।
उसी दुर्ग की शेष सामग्रियों को,
हमीं जो न ढायें कहो कौन ढाये? ॥ 5॥

❁❁❁

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

एवं

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में

अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन 2018

(25 से 28 अक्टूबर 2018)

आप सभी को अगवत है कि "**सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा**" के संयुक्त तत्वावधान में "**अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन–2018 दिल्ली**" का आयोजन दिल्ली में दिनांक 25–26–27 एवं 28 अक्टूबर 2018 तक किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलनों की परम्परा का आरम्भ वर्ष 1927 में दिल्ली से हुआ था। तब से आर्यों के विशाल संगठन के ये आयोजन देश–विदेश में होते रहे। वर्ष 2006 के दिल्ली महासम्मेलन में लिए गए संकल्प के आलोक में इन महासम्मेलनों की शृंखला विदेशों में पुनः आरम्भ हुई और तब से लेकर अब तक **अमेरिका, मॉरीशस, सूरीनाम, हॉलैण्ड, दिल्ली–2012, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर,** थाईलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, **नेपाल एवं वर्मा** में आर्य महासम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए हैं। अब यह महासम्मेलन पुनः दिल्ली में आयोजित हो रहा है। देश–विदेश में इसकी तैयारियां आरम्भ हो चुकी हैं।

आर्यों के महाकुम्भ इस अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन में समूचे देश व विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। वर्ष 2012 के आयोजन के समय 32 देशों के सैकड़ों प्रतिनधियों सहित लगभग डेढ़ लाख आर्यजनों ने सम्मेलन में पहुंचकर समस्त संगठन में ऊर्जा का संचार किया था। यह सम्मेलन पूर्व के आयोजन से भी अधिक विशाल तथा भव्य होगा।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपका सान्निध्य एवं आशीर्वाद हमें सदैव प्राप्त होता रहेगा तभी इस महासम्मेलन की सफलता सम्भव है।

कृपया आप अपने आने का कार्यक्रम निश्चित करके हमें सूचित कर देवें। सम्मेलन की अवधि में आपके भोजन एवं आवास की व्यवस्था सभा की ओर से की जायगी। कृपया अपने आने का कार्यक्रम निश्चित करके पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें। ताकि तदनुरूप व्यवस्थाएं की जा सकें।

–सम्मेलन स्थल–

स्वर्ण जयन्ती पार्क, रोहिणी, सैक्टर–10, दिल्ली (भारत)

सम्पर्क सूत्र– 09824072509, 09826655117, 09810061763

"विद्यया अमृतमश्नुते" पर अपना चिन्तन बड़ी ही सरल भाषा में दृष्टान्त सहित प्रस्तुत किया। सभी ब्रह्मचारियों ने अपनी सशक्त प्रस्तुति दिखाकर आर्य जनों को विश्वास दिलाया कि आर्यसमाज का भविष्य हमारे हाथों सुरक्षित है। अधिक चिन्ता करने की बात नहीं अन्त में ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु ने संगीत के माध्यम से **"यदि हमने वेद पढ़े होते"** गीत को मधुर स्वर में गाया और इस गीत के माध्यम से बताया कि यदि वेदज्ञान की स्थापना होती तो हमारी समाज में फैली अव्यवस्था का नामोनिशान भी न होता और जिस रामराज्य की हम कल्पना करते हैं वही साक्षात् हमारे सामने होता।

सज्जनो! यह बात निश्चित है कि जब तक वैदिक शिक्षा का समावेश हमारी नई पीढ़ियों में नहीं होगा तब तक सारा समाज अशान्ति की अग्नि में धू-धू कर जलता रहेगा और वैदिक शिक्षा के प्रसार-प्रचार के लिए आवश्यक है कि आप अंग्रेजी शिक्षा का व्यामोह छोड़कर अपनी सन्तान का जीवन बचायें और राष्ट्र रक्षा की ओर महत्वपूर्ण कदम बढ़ायें यदि किसी कारणवश आप अपने बच्चों को गुरुकुल में न भेज सकें तो इतना अवश्य करें कि आर्यवीर दल द्वारा आयोजित शिविरों में अपने पुत्र और पुत्रियों को प्रशिक्षित करायें मेरा यह विश्वास है कि यदि आपके बच्चों ने एक शिविर भी पूरा कर लिया तो फिर वे कुमार्गगामी नहीं बनेंगे यदि परमेश्वर की कृपा से आप सम्पन्न हैं तो यह संकल्प लें कि गुरुकुल में पढ़ने वाले किसी एक ब्रह्मचारी की शिक्षा का व्यय आप उठायें। इस प्रकार से गुरुकुल का संचालन सरल हो जायगा और वेद विद्या पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों को धनाभाव के कारण विद्यामन्दिर के दरवाजे से वापस नहीं लौटना पड़ेगा। चिन्तकों ने धन का दो तरह का दुरुपयोग बताया है पहला है अपात्रों को धन देना और दूसरा है पात्रों को धन न देना इसलिए आप अपने धन का सम्पूर्णतया और गुरुकुल शिक्षा के लिए मुक्त हृदय से सहयोग करें इसी से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। इस वर्ष भी गुरुकुल के लिए अनेक लोगों ने अपना सर्वात्मना सहयोग प्रस्तुत किया है। उनमें प्रमुख हैं श्री कृष्णवीर जी शर्मा फरीदाबाद, श्री त्रिलोक जी शर्मा गुरुग्राम, श्री विनोद चौधरी डेयरी वाले बाजना से, श्री सत्यवीर जी मण्डी सचिव खैर, श्री पदमसेन जी गुप्ता करनाल, श्री अशोक आर्य ककुआ-आगरा, श्री अतुल फरसैया सिरसागंज, श्री ओमशरण जी आर्य सिरसागंज, हरदुआगंज, अलीगढ़ के श्रद्धालु आर्यजन आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार यदि आप सब लोग अपना-अपना दायित्व समझकर के सहयोग करेंगे तो वेदमन्दिर, आर्यसमाज का सशक्त प्रचार केन्द्र ही न बनेगा अपितु वृन्दावन गुरुकुल विश्व विद्यालय भी अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। आशा और विश्वास है जो आर्यजन मौसम की विपरीतता के कारण कार्यक्रम में न आ सके वे भी इस पत्रिका के माध्यम से हमारी इन भावनाओं को समझकर प्रेरित होंगे और सर्वजनहिताय इस ज्ञानयज्ञ में अपने आहुति देकर मानव जीवन को सफल करेंगे। कार्यक्रम की व्यवस्था में समस्त ट्रस्ट के पदाधिकारीगण जनपद की आर्यप्रतिनिधि सभा और आर्यसमाजों ने अपना भरपूर सहयोग किया उसके लिए सभी धन्यवाद के पात्र हैं। ❁❁❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	ओंकार उपासना	12.00
विदुर नीति	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
चाणक्य नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
नित्य कर्म विधि	32.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शान्ति कथा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
यज्ञमय जीवन	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2018 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल– 9759804182

मुद्रक : स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600